दुनिया के मजदूरो एक हो!

व्ला. इ. लेनिन

"उग्रवादी" कम्युनिज्म एक बचकाना मर्ज

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
अहमदाबाद नई दिल्ली बम्बई

विषय-सूची

[१]

रूसी क्रान्ति के अन्तरराष्ट्रीय महत्व की बात का क्या अर्थ है ?

रूस में, मज़दूर वर्ग के राजनीतिक सत्ता पर अधिकार करने (२५ अक्तूबर [७ नवम्बर], १९१७ को) के बाद पहले कुछ महीनों तक, शायद यह लगता था कि पिछड़े हुए रूस और पश्चिमी योरप के उन्नत देशों के बीच इतना भारी अन्तर है कि इन देशों में जो मज़दूर क्रान्ति होगी उसमें और हमारी क्रान्ति में कोई विशेष समानता नहीं रहेगी। परन्तु अब हमें काफ़ी अन्तरराष्ट्रीय अनुभव प्राप्त हो चुका है और उससे बहुत निश्चित रूप से यह प्रकट होता है कि हमारी क्रान्ति की कुछ बुनियादी विशेषताएं ऐसी हैं जिनका केवल स्थानीय, या विशिष्ट रूप से राष्ट्रीय, अथवा रूसी महत्व ही नहीं है, बल्कि अन्तरराष्ट्रीय महत्व है। यहां आम अन्तरराष्ट्रीय महत्व से ही मेरा मतलब नहीं है : हमारी क्रान्ति की दो-चार विशेषताएं नहीं, बल्कि सभी बुनियादी विशेषताएं और बहुत सी गौण विशेषताएं भी इस माने में अन्तरराष्ट्रीय महत्व की हैं कि इस क्रान्ति का सभी देशों पर प्रभाव पड़ता है। नहीं; यदि हम अन्तरराष्ट्रीय महत्व शब्द का अति-संकुचित अर्थ में भी प्रयोग करें, यानी यदि उसका हम यह मतलब लगायें कि हमारे देश में जो कुछ हुआ है, वह अन्तरराष्ट्रीय दृष्टि से सत्य है, या यह कि हमारे देश में जो कुछ हुआ है उसका अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर दुहराया जाना ऐतिहासिक रूप से

अवश्यम्भावी है, तो हमें मानना पड़ेगा कि हमारी कुछ बुनियादी विशेषताओं का इस मानी में भी अन्तरराष्ट्रीय महत्व है।

ज़ाहिर है कि इस सचाई को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखना और उसे हमारी क्रान्ति की केवल कुछ बुनियादी विशेषताओं पर लागू न करना बहुत बड़ी ग़लती होगी। इस बात को अनदेखा कर देना भी ग़लत होगा कि उन्नत देशों में से कम से कम एक में जब मज़दूर क्रान्ति सफल हो जायगी, तब हो सकता है कि परिस्थिति में यकायक एक बड़ा परिवर्तन आ जाय; मिसाल के लिए यह कि जल्द ही तब रूस आदर्श देश न रह जाय और एक बार फिर पिछड़ा हुआ देश बन जाय ("सोवियत" एवं समाजवादी दृष्टि से)।

परन्तु इतिहास के वर्तमान काल में, परिस्थिति ठीक ऐसी है कि रूसी आदर्श में सभी देशों को अपने निकट एवं अवश्यम्भावी भविष्य की एक झलक दिखाई देती है और यह झलक भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग की है। प्रत्येक देश के आगे बढ़े हुए मज़दूरों ने बहुत दिनों से यह बात समझ रखी है; और अक्सर तो उन्होंने यह बात इतनी समझी नहीं है, जितनी अपने क्रान्तिकारी वर्ग-स्वभाव के कारण सहज ही ग्रहण कर ली है, महसूस कर ली है।

सोवियत सत्ता का, और बोल्शेविक सिद्धान्तों एवं कार्यनीति की बुनियादी बातों का (संकुचित अर्थ में) अन्तरराष्ट्रीय "महत्व" यही है। दूसरी इन्टरनेशनल (अन्तरराष्ट्रीय) के "क्रान्तिकारी" नेता—जैसे, जर्मनी में काउत्स्की और आस्ट्रिया में ओटो बेयर व फ्रीडरिक एडलर—यह बात समझने में असमर्थ रहे और इसलिए वे प्रतिक्रियावादी तथा निकृष्ट ढंग के अवसरवाद एवं सामाजिक विश्वासघात के प्रतिपादक सिद्ध हुए। यहां लगे हाथों एक बात यह भी कह दें कि विश्व क्रान्ति ("वेलरेवोल्यूशन") नामक गुमनामी पुस्तिका से, जो वियना में १६१६ में प्रकाशित हुई थी, इन लोगों के सोचने का पूरा ढंग और उनके विचारों का पूरा दायरा साफ़-साफ़ प्रकट हो जाता है, बल्कि कहना चाहिए कि इस पुस्तिका से उनकी मूर्खता, पंडिताऊपन, नीचता और मज़दूर वर्ग के हितों के साथ उनकी ग़द्दारी—जो वे "विश्व क्रान्ति"

के विचार का "समर्थन" करने के [illegible]ते ही [illegible] बिलकुल स्पष्ट हो जाती है।

पर इस पुस्तिका पर हम किसी और समय विस्तार से विचार करेंगे। यहां केवल एक बात और बता दें; वह यह कि बहुत दिन हुए, जब काउत्स्की मार्क्सवादी था और विश्वासघाती नहीं बना था, तब उसने इस प्रश्न पर एक इतिहासकार के रूप में विचार करते हुए, ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने की संभावना देखी थी, जिसमें रूसी मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी भावना पश्चिमी योरप के लिए आदर्श का काम करेगी। यह बात १६०२ की है, जब काउत्स्की ने "स्लाव लोग और क्रान्ति" शीर्षक से क्रान्तिकारी इस्क्रा में एक लेख लिखा था। इस लेख में काउत्स्की ने कहा था :

(१८४८ की तुलना में) "इस समय लगता है कि स्लाव लोग न सिर्फ़ क्रान्तिकारी जातियों की पांति में सम्मिलित हो गये हैं, बल्कि क्रान्तिकारी विचारधारा और क्रान्तिकारी व्यवहार का केन्द्र अधिकाधिक स्लाव लोगों की ओर खिंचता जा रहा है। क्रान्तिकारी केन्द्र पश्चिम से पूर्व की ओर हट रहा है। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में क्रान्ति का केन्द्र फ्रांस में था, या कभी-कभी इंगलैंड में पहुँच जाता था। जर्मनी १८४८ में क्रान्तिकारी जातियों की पांतों में शामिल हुआ...। नयी सदी ऐसी घटनाओं के साथ आरम्भ हुई है जिनसे मन में यह विचार आता है कि क्रान्ति का केन्द्र थोड़ा और हट रहा है, अर्थात रूस में पहुँच रहा है...। रूस ने, जिसने क्रान्तिकारी पहलक़दमी के क्षेत्र में पश्चिम से इतना अधिक उधार लिया है, अब शायद खुद पश्चिम को क्रान्ति की प्रेरणा देने का स्रोत बन रहा है। रूस का क्रान्तिकारी आन्दोलन, जिसमें इस समय उभार आया हुआ है, शायद उस थलथल कूपमंडूक-वृत्ति और नरमपंथी राजनीति के भूत को भगाने में सबसे अधिक समर्थ साधन का काम करेगा, जो आजकल हमारे बीच फैलने लगी है। और तब शायद हमारी संघर्ष की इच्छा और अपने महान आदर्शों में हमारी दृढ़ आस्था से एक बार फिर क्रान्ति की लपटें फूट पड़ेंगी। पश्चिमी योरप के लिए रूस अब बहुत दिन से केवल प्रतिक्रियावाद और निरंकुशता का गढ़

नहीं रहा है। कहा जा सकता है कि अब बात बिलकुल उलट गयी है। अब पश्चिमी योरप ही रूस के लिए प्रतिक्रियावाद और निरंकुशता का गढ़ बनता जा रहा है।... रूस के क्रान्तिकारी शायद ज़ार से कभी के निपट लिये होते यदि उन्हें ज़ार के साथ-साथ उसकी मित्र योरपीय पूंजी से भी न लड़ना पड़ता। हमें आशा करनी चाहिए कि इस बार वे दोनों दुश्मनों से निपटने में कामयाब होंगे, और यह नया 'पवित्र गठ-बंधन' अपने पूर्वज से अधिक जल्दी ध्वस्त हो जायगा। रूस के वर्तमान संघर्ष का चाहे जो भी परिणाम हो, लेकिन उसके शहीदों का—दुर्भाग्य-वश जिनकी संख्या बहुत बड़ी होगी—खून और उनका बलिदान व्यर्थ नहीं जायगा। इस खून से सारे सभ्य संसार में सामाजिक क्रान्ति की जड़ों को बल मिलेगा और वे और अधिक प्रचुरता और तेज़ी से फलें-फूलेंगी। १८४८ में स्लाव लोग एक काले-कोहरे के समान थे जिसने जनता के वसन्त के फूलों को कुम्हला दिया था। पर अब की बार शायद वे उस आंधी का काम करनेवाले हैं जो प्रतिक्रियावाद के बर्फ़ को तोड़कर विभिन्न जातियों के लिए एक नया और सुखी वसन्त लायेगी।" (रूसी सामाजिक-जनवादी क्रान्तिकारी पत्र इस्क्रा के १८ वें अंक में कार्ल काट्स्की का "स्लाव लोग और क्रान्ति" शीर्षक लेख, १० मार्च, १९०२)

अठारह वर्ष पहले कार्ल काट्स्की सचमुच जोरदार लिखता था!

[२]

बोल्शेविकों की सफलता की एक बुनियादी शर्त

निश्चय ही अब लगभग हर आदमी यह बात मानता है कि यदि हमारी पार्टी में बहुत सख्त, सही माने में लौह अनुशासन न होता, और यदि पूरा का पूरा मज़दूर वर्ग, अर्थात उसके सभी विचारशील, ईमानदार, आत्मत्यागी, और पिछड़े हुए हिस्सों को साथ ले चलने या उनका नेतृत्व करने में समर्थ, प्रभावशाली तत्व पार्टी का पूर्ण एवं निस्संकोच समर्थन न करते, तो बोल्शेविकों के हाथ में सत्ता ढाई साल तो क्या, ढाई महीने भी न रह पाती।

मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व वास्तव में एक बहुत ही कठिन और निर्मम युद्ध है जो एक नया वर्ग अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रु, पूंजीपति वर्ग के खिलाफ़ चलाता है। इस शत्रु की पराजय से (भले ही वह केवल एक देश में पराजित हुआ हो) उसका प्रतिरोध दस-गुना बढ़ जाता है, और इस शत्रु की शक्ति अन्तरराष्ट्रीय पूंजी की शक्ति में ही निहित नहीं है, इसकी ताक़त पूंजीपति वर्ग के अन्तरराष्ट्रीय सम्बंधों की ताक़त और मज़बूती में ही नहीं पायी जाती, बल्कि वह आदतों की ताक़त में भी पायी जाती है; उसकी शक्ति छोटे पैमाने के उत्पादन की शक्ति में भी निहित है। क्योंकि दुर्भाग्य से, छोटे पैमाने का उत्पादन अब भी दुनिया में बहुत, बहुत फैला हुआ है; और यह छोटे पैमाने का

उत्पादन लगातार, हर दिन, हर घंटे, अपने-आप और बड़े पैमाने पर पूंजीवाद और पूंजीपति वर्ग को पैदा करता रहता है। इन सभी कारणों से मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व अत्यन्त आवश्यक हो जाता है; और एक लम्बा, कठोर और निर्मम युद्ध चलाये बिना, एक जीवन और मरण की लड़ाई लड़े बिना, एक ऐसी लड़ाई लड़े बिना जिसमें धैर्य, अनुशासन, अदम्य साहस और उद्देश्य की एकता की आवश्यकता होती है, पूंजीपति वर्ग पर विजय पाना असम्भव है।

मैं फिर दुहरा दूँ : रूस में मजदूर वर्ग के सफल अधिनायकत्व के अनुभव ने उन लोगों के सामने भी, जिनमें सोचने की सामर्थ्य नहीं है, या जिन्हें इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ है, यह बात बिलकुल साफ़ कर दी है कि मज़दूर वर्ग का पूर्ण केन्द्रीकरण और कठोरतम अनुशासन, पूंजीपति वर्ग पर विजय पाने के लिए एक बुनियादी शर्त है।

इस विषय की चर्चा तो अक्सर होती है। परन्तु इस बात पर पर्याप्त विचार नहीं किया जाता कि इस बात का वास्तव में अर्थ क्या है, और किन परिस्थितियों में यह संभव है। क्या यह बेहतर नहीं होगा यदि सोवियत सत्ता तथा बोल्शेविकों के अभिवादन में भेजे गये सन्देशों में, अब तक से अधिक बार, इस बात का गम्भीर विश्लेषण भी होता कि क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग को जिस अनुशासन की आवश्यकता है, उसे गढ़ने में बोल्शेविक किन कारणों से सफल हुए।

एक राजनीतिक विचारधारा और एक राजनीतिक पार्टी के रूप में बोल्शेविज्म १६०३ से मौजूद है। उस समय से आज तक के बोल्शेविज्म के इस पूरे काल के इतिहास पर विचार करने पर ही हमें अच्छी तरह मालूम हो सकता है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी बोल्शेविज्म कैसे उस लौह अनुशासन को पैदा कर सका और क़ायम रख सका, जिसकी मज़दूर वर्ग की विजय के लिए आवश्यकता थी।

और सबसे पहले तो यह सवाल उठता है : मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी में अनुशासन क़ायम कैसे रखा जाता है? उसे परखा कैसे जाता है? उसे दृढ़ कैसे बनाया जाता है? सबसे पहले, मज़दूर वर्ग

के हिरावल दस्तों की वर्ग चेतना से, क्रान्ति के प्रति उसकी निष्ठा और भक्ति से, उसकी लगन, आत्म-बलिदान और शौर्य से। दूसरे, विशाल मेहनतकश जनता के साथ—मुख्यतः मज़दूर वर्ग के साथ, परन्तु साथ ही ग़ैर-मज़दूर मेहनतकश जनता के साथ भी—अपना सम्बंध जोड़ने, उससे सदा निकट का सम्पर्क बनाये रखने, और किसी हद तक, अगर आप ये शब्द पसन्द करें तो, उसके साथ एकदम घुलमिल जाने से। तीसरे, इस बात से कि यह हिरावल दस्ता कितना सही राजनीतिक नेतृत्व दे रहा है, उसकी राजनीतिक रण-नीति और कार्यनीति कितनी सही है, और आम जनता स्वयं अपने अनुभव से यह बात समझ गयी है या नहीं कि यह रण-नीति और कार्यनीति सही है। बिना इन बातों के *उस क्रान्तिकारी पार्टी में अनुशासन नहीं पैदा हो सकता, जो सही* माने में प्रगतिशील वर्ग की पार्टी बनने के योग्य है, और जिसका उद्देश्य पूंजीपति वर्ग को उलटना और पूरे समाज का कायापलट करना है। इन बातों के बिना अनुशासन क़ायम करने के सभी प्रयत्न लाज़िमी तौर पर बेकार साबित होते हैं, और कोरी लफ़्फ़ाज़ी और नाटकीयता बन कर रह जाते हैं। दूसरी ओर, ये सब बातें एकबारगी पैदा नहीं हो सकतीं। दीर्घकालीन प्रयत्न और बड़े कठिनता से हासिल अनुभव के बाद ही ये बातें पैदा होती हैं। सही क्रान्तिकारी सिद्धान्तों से इन बातों को पैदा करने में सहायता मिलती है। लेकिन क्रान्तिकारी सिद्धान्त पत्थर पर खुदी हुई लकीर नहीं होते, वे तो एक सच्चे जन-आन्दोलन और सच्चे क्रान्तिकारी आन्दोलन का, व्यावहारिक कार्य के साथ घनिष्ठ सम्बंध क़ायम होने से ही, अन्तिम रूप धारण करते हैं।

१९१७–२० में, ऐसी कठिन परिस्थितियों में जो पहले कभी न देखी गयी थीं, यदि बोल्शेविज़्म कठोरतम केन्द्रीकरण और लौह अनुशासन पैदा कर सका और सफलता के साथ उन्हें क़ायम रख सका, तो इसका सीधा कारण रूस की कुछ ऐतिहासिक विशेषताएं थीं।

एक तो यह कि बोल्शेविज़्म १९०३ में मार्क्सवाद के सिद्धान्त की बहुत दृढ़ नींव पर खड़ा हुआ था। और इस सिद्धान्त की सचाई—और केवल इसी एक सिद्धान्त की सचाई—न केवल उन्नीसवीं सदी के पूरे

दौर में संसार भर के अनुभवों से सिद्ध हो गयी है, बल्कि विशेष रूप से यह रूस की क्रान्तिकारी विचारधारा की ग़लतियों और भटकावों, भूलों और असफलताओं के अनुभव से भी सिद्ध हो चुकी है। रूस की प्रगतिशील विचारधारा, जिस पर एक ऐसी बर्बर और प्रतिक्रियावादी ज़ारशाही दमन कर रही थी, जिसकी मिसाल इतिहास में नहीं मिलती है, लगभग आधी शताब्दी तक—उन्नीसवीं सदी के पांचवे दशक से अन्तिम दशक तक—बड़ी उत्सुकता के साथ एक सही क्रान्तिकारी सिद्धान्त की खोज करती रही। योरप और अमरीका में इस क्षेत्र में जो भी "नवीनतम" बात सामने आयी, उसी का रूसियों ने आश्चर्यजनक परिश्रम और साधना के साथ अध्ययन किया। रूस ने सचमुच बड़ी पीड़ा और कष्ट भोगने के बाद मार्क्सवाद को, एकमात्र सही क्रान्तिकारी सिद्धान्त को पाया। उसने आधी शताब्दी तक अनदेखी यातनाएं झेलीं और अनगिनत बलिदान किये, अभूतपूर्व क्रान्तिकारी वीरता और अविश्वसनीय क्रियाशीलता का परिचय दिया, बड़ी साधना के साथ अध्ययन और मनन किया, सिद्धान्तों को व्यवहार में परखा, उनसे बार-बार निराश हुआ, उनकी जांच की, अपने अनुभव को योरप के अनुभव से मिलाया—और यह सब करने के बाद उसे मार्क्सवाद प्राप्त हुआ। ज़ारशाही शासन क्रान्तिकारियों को रूस छोड़कर विदेश चले जाने पर मजबूर करता था। इस कारण उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, क्रान्तिकारी रूस के पास अन्तरराष्ट्रीय सम्बंधों की इतनी बड़ी सम्पत्ति हो गयी थी, और उसके पास क्रान्तिकारी आन्दोलन के संसार-व्यापी विभिन्न रूपों तथा सिद्धान्तों के ज्ञान का इतना विशाल भंडार एकत्रित हो गया था, जो दुनिया के और किसी देश में उपलब्ध नहीं था।

इसके अलावा बोल्शेविज़्म को, जो इस दृढ़ सैद्धान्तिक नींव पर खड़ा हुआ था, पन्द्रह वर्ष तक (१६०३ से १६१७ तक) व्यावहारिक इतिहास से गुज़रना पड़ा जिससे उसे अनुभव का ऐसा खज़ाना मिला, जो दुनिया में और किसी के पास नहीं था। कारण कि इन पन्द्रह वर्षों में और किसी देश को ऐसा क्रान्तिकारी अनुभव नहीं हुआ था, जो रूस के अनुभव के आस-पास भी आता हो। आन्दोलन के बार-बार और

तेज़ी से बदलनेवाले इतने विभिन्न रूप—क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी, शान्तिमय और तूफ़ानी, गुप्त और खुले, छोटे और बड़े पैमाने के, वैधानिक और आतंकवादी—और किसी देश में नहीं देखे गये थे। न किसी देश में इतने कम समय में, आधुनिक समाज के सभी वर्गों के संघर्ष के ऐसे विविध रूप, रंग और तरीक़े देखने में आये थे। और यह संघर्ष भी ऐसा था, जो देश के पिछड़ेपन एवं ज़ारशाही शासन की क्रूरता के कारण असाधारण तेज़ी के साथ परिपक्व हुआ, और अत्यधिक उत्सुकता और सफलता के साथ उसने अमरीका और योरप के राजनीतिक अनुभव की उपयुक्त "नवीनतम बातों" को ग्रहण किया।

[३]

बोल्शेविज्म के इतिहास की मुख्य अवस्थाएं

क्रान्ति की तैयारी के वर्ष (१६०३-०५)। आनेवाले महा तूफ़ान के चिन्ह हर जगह दिखाई देने लगते हैं। सभी वर्गों में बड़ी बेचैनी और तैयारी दिखाई देती है। विदेशों में निर्वासित राजनीतिक कार्यकर्ता क्रान्ति की सभी बुनियादी समस्याओं के सैद्धान्तिक पहलुओं पर बहस करते हैं। तीन मुख्य वर्गों के, तीन प्रधान राजनीतिक धाराओं के— उदारपंथी-पूंजीवादी, निम्न-पूंजीवादी-जनवादी (जो "सामाजिक-जनवादी" व "सामाजिक-क्रान्तिकारी" नामों की ओट में रहते हैं), और मज़दूर-क्रान्तिकारी धाराओं के—प्रतिनिधि, कार्यक्रम तथा कार्य-नीति से सम्बंधित प्रश्नों पर कटुतम संघर्षों द्वारा, आनेवाले खुले वर्ग संघर्ष की तैयारी करते हैं और उसकी पहली झलक पेश करते हैं। १६०५-०७ और १६१७–२० में जिन विभिन्न सवालों को लेकर जनता ने हथियारबन्द संघर्ष चलाया, उन सभी सवालों का बीज रूप में हम इस काल के समाचारपत्रों में अध्ययन कर सकते हैं (और करना चाहिए)। ज़ाहिर है कि इन तीन मुख्य धाराओं के बीच बहुत से अन्तर्कालीन, अस्थायी, अधकचरे रूप भी थे; या यह कहना ज्यादा सही होगा कि अखबारों, पार्टियों, गुटों व दलों के संघर्ष के द्वारा वे राजनीतिक एवं सैद्धांतिक धाराएं स्पष्ट हो रही थीं, जो वास्तव में वर्ग-धाराएं हैं। इस प्रकार, विभिन्न वर्ग आनेवाली लड़ाइयों के लिए आवश्यक. राजनीतिक एवं सैद्धान्तिक अस्त्र-शस्त्र गढ़ रहे थे।

क्रान्ति के वर्ष (१६०५-०७)। सभी वर्ग खुलकर मैदान में आ जाते हैं। कार्यक्रम और कार्यनीति से सम्बंधित सभी विचारों की परख जनता की कार्रवाइयों से की जाती है। हड़ताल आन्दोलन, व्यापकता और उग्रता में संसार में बेमिसाल रूप धारण कर लेता है। आर्थिक हड़तालें राजनीतिक हड़तालों में बदल जाती हैं और बाद में विद्रोह का रूप धारण कर लेती हैं। नेता के रूप में मज़दूर वर्ग और अनुयायी के रूप में ढुलमुल, अस्थिर किसान वर्ग के सम्बंधों की परख अमल में होती है। अपने-आप विकसित होते संघर्ष में से संगठन का सोवियत रूप उत्पन्न होता है। सोवियतों के महत्व को लेकर उस समय जो वाद-विवाद होता है, उसमें १६१७–२० में होनेवाले महान संघर्ष की एक झलक मिलती है। कभी संघर्ष का पार्लामेंटी ढंग अपनाया जाता है तो कभी ग़ैर-पार्लामेंटी ढंग, कभी पार्लामेंट का बहिष्कार करने की कार्यनीति अपनायी जाती है तो कभी पार्लामेंट में भाग लेने की, कभी ग़ैर-क़ानूनी संघर्ष होते हैं तो कभी क़ानूनी तरीक़े इस्तेमाल किये जाते हैं, और ये विभिन्न रूप व तरीक़े एक-दूसरे से सम्बंधित और जुड़े होते हैं— यह सब विविध प्रकार का चित्र-विचित्र अनुभव प्रदान करता है। जहां तक जनता को और नेताओं को, वर्गों को और पार्टियों को, राजनीति की बुनियादी बातें सिखाने का सम्बंध है, तो इस काल का एक महीना, "शांतिमय", "वैधानिक" विकास के एक पूरे वर्ष के बराबर होता है। १६०५ के रिहर्सल (पूर्वाभिनय) के बिना १६१७ में अक्तूबर क्रान्ति की विजय असम्भव थी।

प्रतिक्रिया के वर्ष (१६०७-१०)। ज़ारशाही की जीत हुई। सभी क्रान्तिकारी व विरोधी पार्टियां हार गयीं। राजनीति का स्थान निराशा, पस्तहिम्मती, फूट, झगड़े, विश्वासघात और अश्लीलता ने ले लिया। दार्शनिक आदर्शवाद की ओर झुकाव बढ़ने लगा, रहस्यवाद क्रान्ति-विरोधी भावनाओं की रामनामी बन गया। परन्तु इसके साथ-साथ यह गहरी हार ही वह चीज़ थी जिसने क्रान्तिकारी पार्टियों और क्रान्तिकारी वर्ग को एक ठोस और बहुत मूल्यवान सबक़ सिखाया। यह सबक़ इतिहास के द्वन्द्ववाद की समझ देता था। यह सबक़ राजनीतिक संघर्ष

की समझ देता था और इस संघर्ष को चलाने की कला में दक्ष बनाता था। मुसीबत के वक्त ही सच्चे दोस्तों का पता चलता है। हारी हुई सेनाएं ज्यादा अच्छी तरह सीखती हैं।

विजयी ज़ारशाही को रूस में पूंजीवाद के पहले की, पितृ-सत्तात्मक जीवन-प्रणाली के अवशेषों को और भी तेज़ी से मिटाने पर मजबूर होना पड़ता है। देश का पूंजीवादी ढंग पर विकास बहुत ही तेज़ी से होने लगता है। वर्गों से परे और वर्गों के ऊपर रहने के सारे भ्रम, पूंजीवाद से बच सकने के सारे सपने, हवा हो जाते हैं। वर्ग संघर्ष एक बिलकुल नये और अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट होता है।

क्रान्तिकारी पार्टियों के लिए अपनी शिक्षा पूरी कर लेना आवश्यक होता है। हमला करना वे सीख चुकी हैं। अब उन्हें यह सीखना है कि इस ज्ञान के साथ-साथ, सही ढंग से पीछे हटने का ज्ञान भी आवश्यक है। उन्हें सीखना है—और क्रान्तिकारी वर्ग को अपने कटु अनुभव से यह भी सीखना पड़ता है—कि जब तक ठीक ढंग से हमला करना और ठीक ढंग से पीछे हटना, दोनों ही बातें नहीं सीखी जातीं, तब तक उनकी विजय असम्भव है। जितनी विरोधी व क्रान्तिकारी पार्टियां हारीं, उनमें से बोल्शेविक ही सबसे अधिक संगठित ढंग से पीछे हटे। पीछे हटने में उनकी "सेना" को ही सबसे कम नुक़सान हुआ और उसका मुख्य भाग अधिक सुरक्षित रहा, उनमें फूट-फाट (गहराई और नुक़सान को देखते हुए) सबसे कम हुई, उनमें ही सबसे कम पस्तहिम्मती आयी, और वे ही सबसे अधिक इस स्थिति में रहे कि अधिक से अधिक व्यापक रूप में, ज्यादा से ज्यादा सही ढंग से, और ज्यादा से ज्यादा तेज़ी से फिर काम शुरू कर दें। बोल्शेविकों को यह सफलता केवल इसलिए मिली क्योंकि उन्होंने उन तमाम क्रान्तिकारी बात-बहादुरों का भंडाफोड़ किया और उन्हें पार्टी से निकाल बाहर किया जो यह समझने से इनकार करते थे कि कभी पीछे भी हटना पड़ता है और इसलिए पीछे हटने का ढंग सीखना बिलकुल ज़रूरी है; जो यह समझने से इनकार करते थे कि इसे सीखना बिलकुल आवश्यक है कि घोर प्रतिक्रियावादी पार्लामेंटों में, घोर प्रतिक्रियावादी मज़दूर यूनियनों, सहयोग समितियों, बीमे की

संस्थाओं और दूसरी ऐसी संस्थाओं में क़ानूनी ढंग से किस तरह काम करना चाहिए।

उभार के वर्ष (१६१०–१४)। शुरू-शुरू में उभार बहुत ही धीमा था; फिर १६१२ की लीना की घटनाओं' के बाद, उनमें कुछ तेज़ी आयी। अभूतपूर्व कठिनाइयों को पार करते हुए बोल्शेविकों ने मेन्शेविकों को रास्ते से दूर किया। १६०५ के बाद पूरा पूंजीपति वर्ग यह समझ गया था कि मेन्शेविक मज़दूर आन्दोलन में पूंजीपति वर्ग के दलालों का काम करते हैं। और इसलिए पूरा पूंजीपति वर्ग बोल्शेविकों के खिलाफ़ मेन्शेविकों की हज़ारों तरीक़ों से मदद करता था। परन्तु इस काम में बोल्शेविकों को कदापि सफलता न मिलती, यदि वे ग़ैर-क़ानूनी काम के साथ-साथ, लाज़िमी तौर पर, "क़ानूनी सम्भावनाओं" का उपयोग न करते और यदि वे इस सही कार्यनीति का अनुसरण न करते। घोर प्रतिक्रियावादी दूमा की सभी मज़दूर सीटों को बोल्शेविकों ने जीत लिया।

पहला साम्राज्यवादी विश्व-युद्ध (१६१४–१७)। क़ानूनी पार्लामेंटी तरीक़े का काम—वह भी बहुत ही प्रतिक्रियावादी "पार्लामेंट" में—क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की पार्टी के लिए, बोल्शेविकों के लिए, बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। दूमा के बोल्शेविक मेम्बरों को साइबेरिया में निर्वासित कर दिया जाता है। विदेशों से निकलनेवाले प्रवासी प्रकाशनों में सामाजिक-साम्राज्यवाद, सामाजिक-देशाहंकार, सामाजिक-राष्ट्रवाद, संगत व असंगत अन्तरराष्ट्रीयतावाद, शान्तिवाद और शान्तिवादी भ्रमों के क्रान्तिकारी खंडन के सभी रूप पूरी तरह प्रकट होते हैं। स्विट्ज़रलैंड में, और अन्य कई देशों में रूसी क्रान्तिकारी जिस तरह के स्वतंत्र (ग़ैर-क़ानूनी) विचार-विनिमय को और स्वतंत्र (ग़ैर-क़ानूनी) सही विचार-प्रतिपादन को संगठित करते हैं, उस तरह की कोई चीज़—उससे मिलती-जुलती कोई चीज़ भी—दूसरी इन्टरनेशनल के पढ़े-लिखे जाहिल और खूसट संगठित नहीं कर पाते हैं, क्योंकि इस काल में युद्ध ने उनकी चहेती "क़ानूनी आज़ादी" को सभी उन्नत देशों में खतम कर दिया था। ये ही लोग थे जो रूसी समाजवादी आन्दोलन में पाये

जानेवाले "गुटों" की बहुतायत और उनके आपस के तीव्र झगड़ों पर नाक-भौं चढ़ाया करते थे। यही कारण था कि सभी देशों के सामाजिक-राष्ट्रवादी और "काट्स्कीवादी", दोनों ही, मज़दूर वर्ग के लिए सबसे घृणित ग़द्दार साबित हुए। और १९१७–२० में बोल्शेविज़्म की विजय का एक प्रधान कारण यह था कि १९१४ के अन्त से ही वह सामाजिक-देशाहंकार और "काट्स्कीवाद" (फ्रांस में लौंगुएवाद[1] का, ब्रिटेन में स्वतंत्र लेबर पार्टी[2] व फेबियन लोगों[3] के नेताओं के विचारों का, और इटली में तुराती का भी यही स्थान है) के नीच, गन्दे, घृणित स्वरूप को निर्मम होकर जनता के सामने रखता आया था, और बाद में जनता को स्वयं अपने अनुभव से अधिकाधिक यह विश्वास होता गया था कि बोल्शेविकों का मत सही है।

रूस की दूसरी क्रान्ति (फ़रवरी से अक्तूबर १९१७)। ज़ारशाही की अविश्वसनीय ज्वर-ग्रस्त और मरणोन्मुख अवस्था ने (एक बहुत ही दुखदायी युद्ध के प्रहारों और कठिनाइयों की सहायता से) स्वयं अपने ख़िलाफ़ एक अत्यन्त विनाशात्मक शक्ति को खड़ा कर दिया था। चन्द दिनों में ही रूस एक ऐसे जनवादी-पूंजीवादी प्रजातंत्र में बदल गया—जो युद्ध की परिस्थितियों में—संसार के अन्य किसी भी देश से अधिक स्वतंत्र था। विरोधी एवं क्रान्तिकारी पार्टियों के नेता नयी सरकार बनाने लगे—ठीक उसी तरह जैसे एक "शुद्ध पार्लामेंटी" प्रजातंत्रों में यह काम होता है। और इस बात से कि कोई आदमी किसी पार्लामेंट में, किसी घोर प्रतिक्रियावादी पार्लामेंट में भी, एक विरोधी पार्टी का नेता रह चुका है, उसे क्रान्ति में महत्वपूर्ण भाग लेने में बड़ी मदद मिली।

चन्द हफ्तों में मेन्शेविकों और "सामाजिक-क्रान्तिकारियों" ने दूसरी इन्टरनेशनल के योरोपीय महारथियों, मिनिस्ट्री-बाज़ों और दूसरे अवसरवादी कबाड़ियों के सभी तौर-तरीक़ों, दलीलों और नज़ाकतों को पूरी तरह अपना लिया। आजकल हम लोग श्वाइडेमान और नोस्क, काट्स्की और हिल्फ़रडिंग, रेनेर और औस्टरलित्ज़, ओटो बेयर और फ़्रित्ज़ एडलर, तुराती और लौंगिए जैसे लोगों और इंगलैंड के स्वतंत्र लेबर पार्टी के नेताओं तथा फ़ेबियन लोगों के बारे में जो कुछ पढ़ते हैं,

यह सब हमें ऐसा लगता है (और यह वास्तव में है भी ऐसा ही), मानो कोई पुरानी, जानी-पहचानी कहानी, जी को उबानेवाले ढंग से दुहरायी जा रही हो। मेन्शेविकों के बारे में हम यह सब पहले ही देख चुके हैं। इतिहास ने एक मज़ाक किया और एक पिछड़े हुए देश के अवसरवादियों को, कई उन्नत देशों के अवसरवादियों का अग्रदूत बना दिया।

यदि दूसरी इन्टरनेशनल के सभी महारथियों ने सोवियतों तथा सोवियत शक्ति के महत्व और भूमिका के प्रश्न पर अपना दिवालियापन साबित कर दिया है और अपने हाथों अपना मुँह काला कर लिया है; यदि उन तीन बहुत महत्वपूर्ण पार्टियों के नेताओं ने भी, जिन्होंने दूसरी इन्टरनेशनल को छोड़ दिया है (यानी जर्मन स्वतंत्र सामाजिक-जनवादी पार्टी*, फ्रांसीसी लौंगुएवादी, और ब्रिटिश स्वतंत्र लेबर पार्टी), इस सवाल पर बड़े "विलक्षण ढंग से" अपने को उलझा लिया है और अपनी प्रतिष्ठा से हाथ धो लिया है; यदि वे सब के सब निम्न-पूंजीवादी जनवाद की मिथ्या धारणाओं के दास सिद्ध हुए हैं (अपने को "सामाजिक-जनवादी" कहनेवाले १८४८ के निम्न-पूंजीवादियों की ही भांति)—तो हम ये सारी बातें मेन्शेविकों के सिलसिले में पहले ही देख चुके हैं। इतिहास ने एक मज़ाक किया: १६०५ में रूस में सोवियतों का जन्म हुआ, फ़रवरी १६१७ से लेकर अक्तूबर १६१७ तक मेन्शेविकों ने सोवियतों का बेजा इस्तेमाल किया, और सोवियतों की भूमिका तथा महत्व को न समझ पाने के कारण उनका दिवाला निकल गया; और अब सोवियत शक्ति के विचार ने सारे संसार में जन्म ले लिया है और यह विचार सभी देशों के मज़दूरों में असाधारण वेग से फैलता जा रहा है। हमारे मेन्शेविकों की तरह ही, सोवियतों की भूमिका तथा महत्व को न समझ पाने के कारण, दूसरी इन्टरनेशनल के बहादुरों का भी हर जगह दिवाला निकल रहा है। अनुभव ने यह साबित कर दिया है कि मज़दूर क्रान्ति के कुछ बहुत आवश्यक प्रश्नों के सिलसिले में, सभी देशों को अवश्यम्भावी रूप से वही करना ... जिसे रूस ने किया है।

योरप और अमरीका में अक्सर लोगों की आज जो राय पायी जाती है, उसके विपरीत, बोल्शेविकों ने पार्लामेंटी ढंग के (और वास्तव में) पूंजीवादी प्रजातंत्र के खिलाफ़ और मेन्शेविकों के खिलाफ़ अपना सफल संघर्ष बड़ी सतर्कता के साथ शुरू किया था; और उसके लिए उन्होंने जो तैयारियां की थीं, वे साधारण नहीं थीं। हमने उपरोक्त काल के आरम्भ में ही सरकार को उलटने का नारा बुलन्द नहीं किया था, बल्कि लोगों को यह समझाया था कि सोवियतों की रचना एवं भावनाओं को बदले बिना सरकार को उलटना असम्भव है। हमने पूंजीवादी पार्लामेंट के, विधान-निर्मात्री परिषद के, बहिष्कार की घोषणा नहीं की थी, बल्कि कहा था—और अपनी पार्टी के अप्रैल (१६१७) सम्मेलन के बाद से हम बाक़ायदा पार्टी के नाम से यह कहने लगे थे—कि ऐसा पूंजीवादी प्रजातंत्र जिसमें विधान-निर्मात्री परिषद हो, ऐसे पूंजीवादी प्रजातंत्र से बेहतर है जिसमें विधान-निर्मात्री परिषद न हो; लेकिन "मज़दूरों और किसानों का" प्रजातंत्र, सोवियतों का प्रजातंत्र किसी भी तरह के पूंजीवादी-जनवादी, पार्लामेंटी प्रजातंत्र से बेहतर है। यदि हम इतनी होशियारी और सतर्कता के साथ इतनी गहरी और लम्बी तैयारी न करते, तब न तो अक्तूबर १६१७ में हम विजय प्राप्त कर पाते, और न उस विजय को सुरक्षित रख पाते।

[४]

मज़दूर-आन्दोलन के अन्दर पाये जानेवाले किन शत्रुओं के खिलाफ लड़ कर बोल्शेविज़्म मज़बूत हुआ और फौलादी बना ?

सबसे पहले और मुख्य रूप से, बोल्शेविज़्म को उस अवसरवाद से मोर्चा लेना पड़ा, जो १९१४ तक निश्चित रूप से सामाजिक-देशाहंकार का रूप धारण कर चुका था और जिसने मज़दूर वर्ग के खिलाफ़ निश्चित रूप से पूंजीपति वर्ग का साथ दिया था। स्वभावतः यह मज़दूर आन्दोलन के अन्दर बोल्शेविज़्म का प्रधान शत्रु था। अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में भी यही प्रधान शत्रु है। बोल्शेविकों ने इस शत्रु की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया और आज भी दे रहे हैं। बोल्शेविक कार्यप्रणाली के इस पहलू से विदेशों के लोग भी अब काफ़ी परिचित हो गये हैं।

परन्तु मज़दूर आन्दोलन के अन्दर पाये जानेवाले, बोल्शेविज़्म के एक दूसरे शत्रु के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। अभी विदेशों में इस बात की बहुत कम जानकारी है कि बोल्शेविज़्म वर्षों तक निम्न-पूंजीवादी क्रान्तिवाद के खिलाफ़ लड़ कर बढ़ा, पनपा और मज़बूत हुआ है। इस निम्न-पूंजीवादी क्रान्तिवाद में अराजकतावाद की कुछ बू आती है, या यूं कहिए कि उसने कुछ बातें अराजकतावाद से उधार ली हैं; और एक सुसंगत सर्वहारा वर्ग संघर्ष के लिए जितनी बुनियादी और परिस्थितियों की आवश्यकता है, उनकी कसौटी पर यह खरा

उतरता। मार्क्सवादियों के लिए सैद्धान्तिक रूप से यह एक बिलकुल मानी हुई बात है—और योरप की सभी क्रान्तियों तथा क्रान्तिकारी आन्दोलनों का अनुभव इस बात को पूरी तरह सिद्ध कर चुका है—कि *छोटा स्वामी, छोटा मालिक* (*इस प्रकार का सामाजिक जीव योरप के* अनेक देशों में बहुत बड़े, व्यापक पैमाने पर पाया जाता है), जिसे पूंजीवाद के अन्तर्गत सदा अत्याचार सहना पड़ता है और जिसकी हालत अक्सर बड़ी अविश्वसनीय तेज़ी से बिगड़ती और चौपट होती जाती है, यह क्रान्तिकारीपन की हद पर तो आसानी से पहुँच जाता है, पर लगन, संगठन, अनुशासन और दृढ़ता का परिचय नहीं दे पाता। पूंजीवाद की भयंकरता के कारण निम्न-पूंजीवादियों में "उबाल पैदा होना" एक ऐसी सामाजिक घटना है जो अराजकतावाद की *भांति ही सभी पूंजीवादी देशों में पायी जाती है। सभी जानते हैं कि* ऐसा क्रान्तिवाद कितना क्षणिक, कितना बंजर होता है और कितनी जल्दी वह आत्म-समर्पण, उदासीनता, मृग-मरीचिका, और यहां तक कि किसी न किसी पूंजीवादी "सनक" के प्रति "घोर" आकर्षण में भी बदल जाता है। परन्तु इस सचाई को सैद्धान्तिक व अमूर्त्त रूप से मान *लेने से ही क्रान्तिकारी पार्टियां पुरानी ग़लतियों से मुक्त नहीं हो जातीं।* ये ग़लतियां हमेशा ऐसे मौक़ों पर उभरती हैं जब उनकी ज़रा भी आशंका नहीं होती; वे पहले से किसी क़दर भिन्न रूप धारण कर लेती हैं, ऐसे वेष में या ऐसे रंग में सामने आती हैं जिनकी इसके पहले किसी को जानकारी न थी, और एक अनोखी—कमोबेश अनोखी—*परिस्थिति में अपना तमाशा दिखाती हैं।*

अक्सर, अराजकतावाद मज़दूर आन्दोलन के अवसरवादी पापों के एक प्रकार के दंड के रूप में आता रहा है। ये दोनों भूत एक-दूसरे के पूरक थे। रूस की आबादी योरप के देशों की आबादी से कहीं अधिक निम्न-पूंजीवादी ढंग की है। इसके बावजूद दोनों क्रान्तियों की (१९०५ और १९१७ की) तैयारी के काल में और क्रान्तियों के दौरान में भी, यदि अराजकतावाद का असर रूस में नहीं के बराबर देखने में आया, तो निस्सन्देह इसका श्रेय कुछ हद तक बोल्शेविज़्म को देना पड़ेगा, जिसने

अवसरवाद का सदा निर्ममता के साथ और बिना कोई समझौता किये मुकाबला किया है। "कुछ हद तक" मैंने इसलिए कहा कि गुज़रे हुए ज़माने में (उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक में), रूस में अराजकतावाद के प्रभाव को कम करने में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका इस बात की थी कि अराजकतावाद को रूस में फलने-फूलने का बहुत अवसर मिल चुका था, और तब उसका सर्वथा अविवेकपूर्ण रूप, और क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग के एक मार्ग-दर्शक सिद्धान्त के रूप में उसका दिवालियापन, पूरी तरह साबित हो गया था।

१९०३ में अपने जन्म के समय ही, बोल्शेविज़्म ने निम्न-पूंजीवादी, अर्ध-अराजकतावादी (अथवा शौकिया अराजकतावादी) क्रान्तिवाद के खिलाफ़ डटकर संघर्ष करने की परम्परा हासिल कर ली थी। क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवादी आन्दोलन की सदा से यही परम्परा रही है। १९००–०३ में, जब रूस में क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की जन-पार्टी की नींव डाली ही जा रही थी, यह परम्परा विशेष रूप से शक्तिशाली हो गयी थी। निम्न-पूंजीवादी क्रान्तिवाद का रुझान और सब पार्टियों से अधिक "समाजवादी-क्रान्तिकारी" पार्टी में ज़ाहिर होता था। बोल्शेविज़्म ने इस पार्टी के विरुद्ध संघर्ष करने के काम को एक परम्परा के रूप में ग्रहण किया और उसे जारी रखा। यह संघर्ष बोल्शेविज़्म तीन मुख्य बातों को लेकर करता था। पहली बात, यह कि यह पार्टी मार्क्सवाद को ठुकरा कर इस बात को समझने से एकदम इनकार करती थी (या यह कहना ज्यादा सही होगा कि वह इसे समझने में असमर्थ थी) कि किसी प्रकार की राजनीतिक कार्रवाई शुरू करने से पहले, वर्ग-शक्तियों का और उनके आपसी सम्बंधों का सही और वास्तविक मूल्यांकन करना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरे, यह पार्टी इसलिए अपने को विशेष रूप से "क्रान्तिकारी" अथवा "उग्र" समझती थी कि वह व्यक्तिगत आतंकवाद को, हत्याओं को उचित समझती थी, जब कि हम मार्क्सवादी उसके एकदम खिलाफ़ थे। ज़ाहिर है कि हम लोग केवल उपयोगिता के आधार पर व्यक्तिगत आतंक के खिलाफ़ थे, और जो लोग महान फ्रांसीसी क्रान्ति के आतंक का, या आम तौर पर

ऐसे किसी भी आतंक का "सिद्धान्ततः" विरोध करने की जुर्रत करते थे —जिसका कि कोई सफल क्रान्तिकारी पार्टी सारी दुनिया के पूंजीपति वर्ग से घिरे होने पर इस्तेमाल कर रही हो—उनका प्लेख़ानोव १६००-०३ में ही अच्छी तरह मज़ाक उड़ा चुके थे, जब कि वह मार्क्सवादी और क्रान्तिकारी थे। तीसरे, "समाजवादी-क्रान्तिकारी" लोग जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के अपेक्षाकृत महत्वहीन अवसरवादी पापों पर नाक-भौं सिकोड़ने को तो बड़ी "उग्र" बात समझते थे, परन्तु वे खुद उस पार्टी के घोरतम अवसरवादियों की नक़ल करते थे। उदाहरण के लिए, खेती के सवाल पर या मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व के प्रश्न पर वे यही करते थे।

चलते-चलते हम यह भी कह दें कि इतिहास ने अब हमारी इस राय को—जिसे हम सदा कहते आये हैं—बड़े पैमाने पर, संसार-व्यापी ऐतिहासिक पैमाने पर सही साबित कर दिया है कि क्रान्तिकारी जर्मन सामाजिक जनवाद (ध्यान रखिए कि प्लेख़ानोव ने १६००—०३ में ही बर्नस्टीन को पार्टी से निकालने की मांग की थी, और बोल्शेविकों ने इस परम्परा का सदा पालन करते हुए १६१३ में लेजियन[1] की घोर नीचता, विश्वासघात और ग़द्दारी का भंडाफोड़ किया था), वैसी पार्टी बनने के सबसे ज्यादा क़रीब पहुँच गया था, जैसी पार्टी की क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की विजय के लिए आवश्यकता होती है। अब १६२० में, युद्ध-काल की तथा युद्ध के बाद के शुरू के वर्षों की समस्त अपमानजनक असफलताओं और संकटों के बाद, यह बात एकदम साफ़ हो गयी है कि पश्चिम की तमाम पार्टियों में जर्मन क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवाद ने सबसे अच्छे नेता पैदा किये, और उसने अन्य सब पार्टियों से जल्दी नयी शक्ति प्राप्त की, नया बल प्राप्त किया और फिर से अपने पैरों पर खड़ी हो गयी। स्पार्टकसवादी पार्टी*, और "जर्मनी की स्वतंत्र सामाजिक-जनवादी पार्टी" के उग्रवादी, मज़दूर-पक्षी दल, दोनों के बारे में यह बात बिलकुल साफ़ देखी जा सकती है। स्वतंत्र जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी का उग्रवादी पक्ष काउत्स्की, हिल्फ़रडिंग, लेदेबूर और क्रिस्पियन जैसे लोगों के अवसरवाद और कायरता के ख़िलाफ़ अनवरत संघर्ष कर रहा है।

अब यदि हम एक सम्पूर्ण ऐतिहासिक युग पर, जो बिलकुल पूरा हो गया है, यानी जो पेरिस कम्यून से शुरू होकर पहले समाजवादी सोवियत प्रजातंत्र की स्थापना पर समाप्त होता है, विचार करें, तो मालूम होगा कि आम तौर पर अराजकतावाद की तरफ़ मार्क्सवाद का रुख बिलकुल निश्चित और साफ़ नज़र आता है। अन्तिम विश्लेषण में, मार्क्सवाद सही साबित हुआ है। और यद्यपि अधिकतर समाजवादी पार्टियों में राजसत्ता के बारे में फैले हुए अवसरवादी विचारों के बारे में, अराजकतावादियों का कहना सही था, फिर भी यह कहना ज़रूरी है कि एक तो यह अवसरवाद, राजसत्ता के विषय में मार्क्स के विचारों को तोड़-मरोड़ कर रखने, यहां तक कि जान-बूझ कर उन्हें बिलकुल दबा देने से सम्बंधित था (अपनी पुस्तक राजसत्ता और क्रान्ति में मैंने बताया था कि १८७५ से १९११ तक, छत्तीस वर्ष तक बेबेल ने एंगेल्स के उस पत्र को छिपा रखा था जिसमें राजसत्ता के बारे में सामाजिक-जनवादियों की प्रचलित धारणाओं के अवसरवाद का स्पष्ट, तेज़, दो-टूक और बेलाग शब्दों में पर्दाफ़ाश किया गया था)। दूसरे, यह बताना भी ज़रूरी है कि इन अवसरवादी विचारों का खंडन करने, सोवियत सत्ता को स्वीकार करने और यह मनवाने का काम कि वह पूंजीवादी पार्लामेंटी प्रजातंत्र से बेहतर है, सबसे अधिक तेज़ी से और व्यापक रूप में, योरप और अमरीका की समाजवादी पार्टियों की सबसे अधिक मार्क्सवादी धाराओं के ज़रिए ही सम्पन्न हुआ है।

बोल्शेविज़्म स्वयं अपनी पार्टी के अन्दर "उग्रवादी" भटकावों के खिलाफ़ जो संघर्ष चला रहा था, उसने दो अवसरों पर विशेष रूप से विशाल रूप धारण कर लिया था : १९०८ में इस प्रश्न पर कि एक घोर प्रतिक्रियावादी "पार्लामेंट" में और घोर प्रतिक्रियावादी क़ानूनों से जकड़ी क़ानूनी मज़दूर संस्थाओं में भाग लिया जाय या नहीं; और फिर १९१८ में (ब्रेस्त-लितोव्स्क की शांति-संधि के समय[८]) इस प्रश्न को लेकर कि अमुक "समझौता" सही है या नहीं।

१९०८ में "उग्रवादी" बोल्शेविकों को हमारी पार्टी से निकाल दिया गया, क्योंकि वे लोग कठमुल्लों की तरह इस बात को समझने से

इनकार कर रहे थे कि घोर प्रतिक्रियावादी "पार्लामेंट" में भाग लेना भी आवश्यक होता है। "उग्रवादियों" ने—जिनमें से कई बड़े अच्छे क्रान्तिकारी थे, जो बाद में गौरव के साथ कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बने (आज भी हैं)—विशेष रूप से १६०५ के बहिष्कार के सफल अनुभव को अपना आधार बनाया। अगस्त १६०५ में जब ज़ार ने एक सलाहकार "पार्लामेंट" बुलाने की घोषणा की, तो बोल्शेविकों ने—विरोधी पक्ष की सभी पार्टियों और मेन्शेविकों के ज़ोरदार विरोध के बावजूद—उसका बहिष्कार करने की अपील की, और सचमुच उस पार्लामेंट को अक्तूबर १६०५ की क्रान्ति बहा ले गयी। उस समय बहिष्कार करने की नीति सही सिद्ध हुई थी, इसलिए नहीं कि प्रतिक्रियावादी पार्लामेंटों का बहिष्कार करना आम तौर पर सही है, बल्कि इसलिए कि हमने उस वस्तु-स्थिति का सही मूल्यांकन किया था, जिसमें मज़दूरों की बड़ी-बड़ी हड़तालें बहुत तेज़ी से एक राजनीतिक हड़ताल में, फिर एक क्रान्तिकारी हड़ताल में, और अन्त में एक विद्रोह में बदल रही थीं। इसके अलावा, तब संघर्ष इस सवाल को लेकर चल रहा था कि पहली प्रतिनिधि परिषद को बुलाने का काम ज़ार के हाथों में छोड़ दिया जाय, या पुराने शासन के हाथों से यह काम छीन लिया जाय। परन्तु जब इसका कोई निश्चय नहीं था और न हो सकता था कि वस्तुस्थिति पहले जैसी ही है, और न जब इसका ही कोई निश्चय था कि घटनाओं का विकास ठीक उसी दिशा में और उसी गति से हो रहा है, तब बहिष्कार करने का नारा सही नहीं रह गया था।

१६०५ में "पार्लामेंट" का बोल्शेविकों ने जो बहिष्कार किया, उससे क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग को बहुत ही मूल्यवान राजनीतिक अनुभव प्राप्त हुआ। और उससे यह भी साबित हो गया कि संघर्ष के क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी तथा पार्लामेंटी और ग़ैर-पार्लामेंटी रूपों को मिलाने के दौरान में कभी-कभी यह लाभदायक, और यहां तक कि आवश्यक भी, होता है कि पार्लामेंटी रूपों को त्याग दिया जाय। परन्तु इस अनुभव को अंधों और नक़्क़ालों की तरह, बिना कुछ सोचे-समझे बिलकुल दूसरी परिस्थितियों और दूसरे हालात पर लागू करना एक बड़ी भारी

गलती होगी। १६[illegible] में "[illegible]" का बहिष्कार करके बोल्शेविकों ने ग़लती की थी, हालांकि [illegible]) ग़लती थी और आसानी से उसे ठीक कर लिया गया।* [illegible] १६०८ और बाद के वर्षों में दूमा का बहिष्कार करना बहुत बड़ी ग़लती होती, जिसे ठीक करना मुश्किल हो जाता, क्योंकि एक तो उस वक्त क्रान्तिकारी लहर के बहुत तेज़ी से उठने और विद्रोह में बदल जाने की आशा नहीं की जा सकती थी, और दूसरे, पूंजीवादी बादशाहत के पुनर्संस्कार से एक पूरी ऐतिहासिक परिस्थिति ऐसी पैदा हो गयी थी जिसमें क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी काम को मिलाना अत्यन्त आवश्यक था। आज जब हम पीछे की ओर मुड़कर इस पूरे ऐतिहासिक काल पर, जिसका बाद के कालों से सम्बंध अब पूरी तरह प्रकट हो गया है, नज़र डालते हैं, तो यह बात ख़ास तौर पर साफ़ हो जाती है कि यदि बोल्शेविक दृढ़ता के साथ इस मत के लिए न लड़ते कि संघर्ष के क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी रूपों को मिलाकर चलना आवश्यक है और एक घोर प्रतिक्रियावादी पार्लामेंट में और प्रतिक्रियावादी क़ानूनों से जकड़ी दूसरी अनेक संस्थाओं (बीमारी के बीमे से सम्बंधित संस्थाओं, आदि) में भाग लेना आवश्यक है, तो १६०८ से १६१४ तक के काल में मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के मुख्य भाग को (मज़बूत करना, बढ़ाना, विकसित करना तो दूर की बात है) सुरक्षित रखना भी बोल्शेविकों के लिए असम्भव हो जाता।

१६१८ में बात इस हद तक नहीं बढ़ी कि पार्टी में फूट हो जाय। उस समय "उग्रवादी" कम्युनिस्ट हमारी पार्टी के अन्दर ही एक अलग दल या "गुट" की तरह काम करते थे; और यह बात भी बहुत दिन तक नहीं रही। उसी साल, यानी १६१८ में, "उग्रवादी कम्युनिज्म"

---

* जो बात व्यक्तियों पर लागू होती है, वही बात—कुछ ज़रूरी संशोधनों के साथ—राजनीति और पार्टियों पर भी लागू होती है। बुद्धिमान वह नहीं है जो कभी ग़लती नहीं करता। ऐसे आदमी न कहीं हैं, न हो सकते हैं। बुद्धिमान वह है जो ज्यादा बड़ी ग़लतियां नहीं करता और जो इन ग़लतियों को आसानी से और जल्दी से ठीक करना जानता है।

के सबसे प्रमुख प्रतिनिधियों में, मिसाल के लिए कामरेड रादेक और बुखारिन ने खुलेआम अपनी ग़लती स्वीकार कर ली। इन लोगों का विचार था कि ब्रेस्त-लितोव्स्क संधि के द्वारा साम्राज्यवादियों से एक ऐसा समझौता किया गया था, जो सिद्धान्त की दृष्टि से अनुचित और क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की पार्टी के लिए हानिकारक था। दरअसल इस संधि के ज़रिए साम्राज्यवादियों के साथ समझौता तो ज़रूर किया गया था, पर वह एक ऐसा समझौता था जो उस समय की विशेष परिस्थितियों में आवश्यक था।

आज जब मैं, उदाहरण के लिए, "समाजवादी-क्रान्तिकारियों" को ब्रेस्त-लितोव्स्क संधि के समय की हमारी कार्यनीति की आलोचना करते हुए सुनता हूँ, या जब मैं अपने साथ एक बातचीत के दौरान में कामरेड लांसबरी को यह कहते हुए पाता हूँ कि: "हमारे ब्रिटिश ट्रेड यूनियन नेता कहते हैं कि यदि बोल्शेविकों का समझौता करना सही था तो हमारा समझौता करना भी सही है", तब मैं आम तौर पर इन लोगों का जवाब देते हुए इस सरल और "प्रचलित" मिसाल को पेश करता हूँ :

कल्पना कीजिए कि कुछ हथियारबन्द डाकुओं ने आपकी मोटर रोक ली है। आप अपना रुपया, पासपोर्ट, रिवाल्वर और मोटर डाकुओं को सौंप देते हैं। बदले में आप डाकुओं के आनन्ददायक संग से छुटकारा पा जाते हैं। निस्संदेह यह एक समझौता है। "तुम मुझे दो, मैं तुम्हें देता हूँ" ("मैं" तुम्हें रुपया, रिवाल्वर व मोटर "देता हूँ", "ताकि तुम मुझे" शान्ति से जान बचाकर चले जाने का अवसर "देते हो")। परन्तु क्या होश-हवास दुरुस्त रखनेवाला कोई ऐसा आदमी भी कहीं मिलेगा जो यह कहे कि यह समझौता "सिद्धान्त की दृष्टि से अनुचित" था, या जो ऐसा समझौता करनेवाले को डाकुओं का साथी बताये। (गोकि यह सम्भव है कि डाकू लोग उस मोटर और रिवाल्वर का कहीं और डाका डालने के लिए इस्तेमाल करें)! जर्मन साम्राज्यवाद के डाकुओं के साथ हमने जो समझौता किया था, वह इसी प्रकार का समझौता था।

परन्तु जब रूस में मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने, जर्मनी में श्चाइडेमानवादियों (और बहुत हद तक काउत्स्कीवादियों) ने, आस्ट्रिया में ओटो बेयर और फ्रीडरिक एडलर ने (श्रीमान रेनेर और उनके संगी-साथियों की तो बात ही छोड़िए), फ्रांस में रेनोदेल, लौंगुए और उनके संगी-साथियों ने, तथा इंगलैंड में फेबियन लोगों, "स्वतंत्र" और "लेबर पार्टी वालों"[१] ने,—१९१४-१९१८ और १९१८-१९२० में—अपने देशों के क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ अपने-अपने देश के डकैतों के साथ, और कभी-कभी "मित्र राष्ट्रों" के पूंजीपति वर्ग के साथ, जो समझौते किये थे, तब ये सारे महानुभाव सचमुच में डाकुओं के साथी बन गये थे।

परिणाम स्पष्ट निकलता है : समझौतों को "सिद्धान्ततः" अनुचित समझना, आम तौर पर सभी समझौतों को, चाहे वे किसी भी प्रकार के हों, ग़लत मानना, महज़ बचपना है, जिस पर गम्भीरता से विचार करना भी कठिन है। जो राजनीतिक नेता सचमुच अपने-आपको क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग के लिए उपयोगी बनाना चाहते हैं, उनका फ़र्ज़ है कि वे ऐसे ठोस मामलों को अलग करके लें जिनमें समझौता करना अनुचित हो, जिनमें समझौता करना वास्तव में अवसरवाद तथा गद्दारी का परिचायक हो, और तब वे ऐसे ठोस समझौतों की पूरी ताक़त से आलोचना करें, उनका बेरहमी से भंडाफोड़ करें, उनके विरुद्ध निर्मम युद्ध शुरू कर दें; और पार्लामेंट की कलाबाजियों में सिद्धहस्त और "व्यावहारिक" समाजवाद के परम-पंडितों को, समझौतों के बारे में आम भाषण झाड़कर अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हो जाने न दें। ब्रिटिश ट्रेड यूनियनों और फ़ेबियन समिति, और "स्वतंत्र" लेबर पार्टी के "नेता" भी, ठीक इसी चाल के ज़रिए उस गद्दारी की ज़िम्मेदारी से बच भागने की कोशिश कर रहे हैं, जो उन्होंने एक ऐसा समझौता करके की है जो सचमुच में सबसे निकृष्ट ढंग के अवसरवाद, विश्वासघात और गद्दारी के बराबर है!

समझौतों और समझौतों में फ़र्क़ होता है। आदमी को प्रत्येक समझौते की, या प्रत्येक तरह के समझौते की परिस्थितियों

और ठोस शर्तों का विश्लेषण करना चाहिए। एक व्यक्ति डाकुओं को रुपया और हथियार इसलिए देता है कि वे ज्यादा नुक़सान न करें और बाद में उन्हें पकड़ कर फांसी पर लटकवाने में आसानी हो। दूसरा व्यक्ति लूटमार में हिस्सा पाने के लिए डाकुओं को रुपया और हथियार देता है। हमें दोनों व्यक्तियों में फ़र्क़ करना सीखना चाहिए। पर इस बच्चों की सी साधारण मिसाल में यह फ़र्क़ करना जितना आसान मालूम होता है, राजनीति में सदा उतना आसान नहीं होता। फिर भी यह तो सत्य है कि मज़दूरों के लिए पहले से ही कोई ऐसा तैयार नुस्खा नहीं निकाला जा सकता, जो सभी हालात और सब प्रकार की समस्याओं को हल कर दिया करे। न कोई इस बात का ही आश्वासन दे सकता है कि क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग को अपनी नीति के सम्बंध में कभी कठिन या पेचीदा परिस्थितियों का सामना नहीं करना पड़ेगा। जो आदमी ऐसा नुस्खा निकालने की सोचे, या ऐसा आश्वासन दे, उसे केवल पाखंडी ही समझना चाहिए।

मैंने जो कुछ कहा है, उसके बारे में कोई भी ग़लतफ़हमी न हो, इस खयाल से मैं अलग-अलग समझौतों का विश्लेषण करने के चन्द बुनियादी नियम यहां संक्षेप में बताने की कोशिश करूंगा।

ब्रेस्त-लितोव्स्क की शान्ति-संधि के द्वारा जिस पार्टी ने जर्मन साम्राज्यवादियों से समझौता किया था, वह १९१४ से ही अन्तरराष्ट्रीयतावाद के अपने सिद्धान्त पर अमल करती आ रही थी। जब दो साम्राज्यवादी डाकुओं में युद्ध शुरू हुआ, तो उसने निडर होकर ज़ारशाही की हार का नारा बुलन्द किया और इस युद्ध में "मातृभूमि की रक्षा" का नारा देनेवालों की निन्दा की। पार्लामेंट में इस पार्टी के जो प्रतिनिधि थे, उन्होंने एक पूंजीवादी सरकार में मिनिस्टर बनने से बेहतर यह समझा कि निर्वासित होकर साइबेरिया चले जायें। ज़ारशाही को उलट कर जनवादी प्रजातंत्र की स्थापना करनेवाली क्रान्ति ने इस पार्टी को एक नयी और बड़ी गम्भीर कसौटी पर परखा: इस पार्टी ने "अपने" साम्राज्यवादियों के साथ गठबंधन और समझौता नहीं किया, बल्कि उन्हें उलटने की तैयारी की, और उलटकर रख दिया। राजनीतिक सत्ता पर

क़ब्ज़ा कर लेने के बाद इस पार्टी ने ज़मींदारी या पूंजीवादी सम्पत्ति का एक निशान भी बाक़ी नहीं छोड़ा। साम्राज्यवादियों की गुप्त संधियों को प्रकाशित करने और उन्हें न मानने का ऐलान करने के बाद, इस पार्टी ने सभी देशों के सामने शान्ति का प्रस्ताव रखा। और ब्रेस्त-लितोव्स्क संधि के अत्याचार को उसने केवल तभी सहना क़बूल किया, जब कि अंग्रेज़-फ़्रांसीसी साम्राज्यवादियों ने किसी तरह शान्ति स्थापित करना बिलकुल असम्भव बना दिया था, और जब बोल्शेविकों ने जर्मनी तथा अन्य देशों में क्रान्ति को जल्दी कराने की हर मुमकिन कोशिश करके देख ली थी। ऐसी परिस्थिति में, ऐसी पार्टी द्वारा किया हुआ यह समझौता बिलकुल सही था, यह बात हर आदमी के सामने अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है।

रूस के मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने (१६१४-२० में दूसरी इन्टरनेशनल के संसार भर के सभी नेताओं की तरह) "मातृ-भूमि की रक्षा", यानी अपने देश के लुटेरे पूंजीपति वर्ग की रक्षा के नारे को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उचित घोषित करके ग़द्दारी की शुरूआत की। फिर उन्होंने अपनी ग़द्दारी जारी रखते हुए अपने देश के पूंजीपति वर्ग के साथ गठबंधन किया और अपने देश के क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग के खिलाफ़ अपने देश के पूंजीपति वर्ग का साथ दिया। विदेशों में जिस प्रकार उनके हमपेशा लोगों ने अपने-अपने देश के पूंजीपति वर्ग के साथ मोर्चा बनाया था, रूस में उसी प्रकार उन्होंने पहले केरेंस्की[10] तथा कैडेटों[11] के साथ और फिर कोलचक तथा डेनीकिन के साथ मोर्चा बनाया। इस मोर्चे का मतलब था मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ पूंजीपति वर्ग के साथ मिल जाना। शुरू से अन्त तक, साम्राज्यवाद के डाकुओं के साथ इन लोगों के समझौते का मतलब यह था कि वे ख़ुद साम्राज्यवादी लूट में साझीदार बन गये थे।

[५]

जर्मनी में "उग्रवादी" कम्युनिज्म
नेता—पार्टी—वर्ग—जनता

जिन जर्मन कम्युनिस्टों का अब हमें ज़िक्र करना है, वे अपने को "उग्रवादी" नहीं कहते, बल्कि यदि मैं गलती नहीं करता, तो "सिद्धान्ततः विरोधी" कहते हैं। परन्तु "उग्रवाद के बचपन के मर्ज़" के सभी लक्षण इन लोगों में दिखाई देते हैं। नीचे दिया गया हाल पढ़ कर यह बात साफ़ हो जायगी।

इस विरोधी दल के दृष्टिकोण से लिखी गयी एक पुस्तिका है जो 'जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी (स्पार्टकस लीग) में फूट' के नाम से छपी है और जिसे "मेन नदी के तट पर स्थित फ्रैंकफुर्ट नगर के स्थानीय दल" ने प्रकाशित किया है। इस पुस्तिका में इस विरोधी पक्ष के दृष्टिकोण को बहुत ही स्पष्टता के साथ, संक्षेप में, और नपे-तुले शब्दों में रखा गया है। हम कुछ उद्धरण यहां देते हैं, जिनसे पाठक को इन लोगों के विचारों की मूल बातों का पर्याप्त ज्ञान हो जायगा :

> "कम्युनिस्ट पार्टी दृढ़तम वर्ग-संघर्ष की पार्टी है ...।"
>
> "राजनीतिक दृष्टि से, परिवर्तन का काल (पूंजीवाद और समाजवाद के बीच का काल) मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व का काल है ...।"
>
> "सवाल उठता है : इस अधिनायकत्व का वाहन कौन होगा : कम्युनिस्ट पार्टी या मज़दूर वर्ग ?... सिद्धान्त की दृष्टि से

हमें कम्युनिस्ट पार्टी का अधिनायकत्व कायम करने की कोशिश करनी चाहिए या मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व ? !!..."

(शब्दों पर ज़ोर पुस्तिका का है)

इसके अलावा, पुस्तिका के लेखक ने जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी की "केन्द्रीय समिति" पर आरोप लगाया है कि वह जर्मनी की स्वतंत्र सामाजिक-जनवादी पार्टी के साथ मोर्चा बनाने की कोशिश कर रही है, और संघर्ष के "सभी राजनीतिक तरीक़ों को," पार्लामेंटी तरीक़ों को भी, "सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करने के सवाल" को वह केवल इसलिए उठा रही है ताकि स्वतंत्र दलवालों के साथ मोर्चा बनाने की अपनी मुख्य और असली कोशिश को छिपाया जा सके। इसके आगे पुस्तिका में कहा गया है :

"विरोधी दल ने एक दूसरा रास्ता अपने लिए चुना है। उसका मत है कि कम्युनिस्ट पार्टी के शासन का प्रश्न और पार्टी के अधिनायकत्व का प्रश्न केवल कार्यनीति का प्रश्न है। किसी भी हालत में, पार्टी-शासन का अन्तिम स्वरूप कम्युनिस्ट पार्टी का शासन ही होता है। सिद्धान्त की दृष्टि से, हमें मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व के लिए कोशिश करनी चाहिए। और पार्टी की सभी कार्रवाइयों का—उसके संगठन, संघर्ष के तरीक़ों, उसकी रण-नीति और कार्यनीति का—यही लक्ष्य होना चाहिए। और इसलिए, दूसरी पार्टियों के साथ समझौते करना, फिर से संघर्ष के पार्लामेंटी तरीक़ों में फंस जाना, जब कि ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टि से ये तरीक़े अब पुराने पड़ गये हैं और किसी काम के नहीं रह गये हैं, दांव-पेंच और समझौतों की नीतियों पर चलना—ये सब बातें हमें एकदम छोड़ देनी चाहिए ...। अब पूरा ज़ोर देना चाहिए क्रान्तिकारी संघर्ष के उन तरीक़ों पर, जो मज़दूर वर्ग के अपने तरीक़े हैं। अधिक से अधिक व्यापक आधार पर हमें अधिक से अधिक विस्तृत क्षेत्र के, संगठन के, नये रूपों को जन्म देना चाहिए ताकि मज़दूर वर्ग के अधिक से अधिक तत्व और स्तर साथ में आ सकें और कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में

क्रान्तिकारी संघर्ष में भाग ले सकें। तमाम क्रान्तिकारी तत्वों को जिस एक बिन्दु पर इकट्ठा करना होगा, वह मज़दूरों की यूनियन होगी, जिसका आधार कारखानों के संगठन होंगे। इसमें वे तमाम मज़दूर शामिल होंगे जो 'ट्रेड यूनियनों को छोड़ो!' नारे को मानते हैं। इससे लड़ाकू मज़दूर वर्ग का अधिक से अधिक विस्तृत लड़ाकू पांतों में संगठन होगा। इस यूनियन में दाखले के लिए वर्ग संघर्ष को, सोवियत व्यवस्था को, और मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व को मानना काफ़ी होगा। लड़ाकू जनता को इसके आगे ले जाने, राजनीतिक शिक्षा देने और संघर्ष के दौरान में उसे सही राजनीति की ओर ले आने का काम कम्युनिस्ट पार्टी का होगा, जो मज़दूरों की यूनियन से अलग होगी ...।

"परिणाम-स्वरूप, इस समय दो कम्युनिस्ट पार्टियां एक-दूसरे के खिलाफ़ खड़ी हैं।

"एक नेताओं की पार्टी है, जो ऊपर से क्रान्तिकारी संघर्ष का संगठन और संचालन करने की कोशिश करती है, समझौतों का सहारा लेती है, और पार्लामेंटी तरीक़ों का इस्तेमाल करती है ताकि एक ऐसी परिस्थिति पैदा हो जिसमें वह एक संयुक्त सरकार में प्रवेश करने में सफल हो। अधिनायकत्व इस संयुक्त सरकार के हाथों में रहेगा।

"दूसरी जन-पार्टी है, जो नीचे से क्रान्तिकारी संघर्ष के उठने की आशा रखती है, और संघर्ष के केवल एक ही तरीक़े को जानती है और उसी का उपयोग करती है, क्योंकि वह तरीक़ा स्पष्ट रूप में उसे लक्ष्य तक ले जाता है, और वह बाक़ी सभी पार्लामेंटी और अवसरवादी तरीक़ों को ग़लत समझती है। एकमात्र तरीक़ा, जिसे यह पार्टी मानती है, पूंजीपति वर्ग को बिना शर्त उलटने का तरीक़ा है, जिसका उद्देश्य समाजवाद की स्थापना के लिए मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व क़ायम करना होगा ......।

"... वहां, नेताओं का अधिनायकत्व है; यहां, जनता का अधिनायकत्व है! यही हमारा नारा है।"

जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर जो विरोधी दल है, उसके दृष्टिकोण की सबसे खास बातें यही हैं।

कोई भी बोल्शेविक, जिसने १९०३ से बोल्शेविज्म के विकास में सजग रूप से भाग लिया है, या उसका निकट से अध्ययन किया है, इन तर्कों को पढ़ कर तुरन्त कह उठेगा: "अरे, यह तो वही पुरानी जानी-पहचानी बकवास है! कैसी बचपन की बातें हैं 'उग्रवादियों' की!"

परन्तु हम इन तर्कों पर थोड़ा और ध्यानपूर्वक विचार कर लें।

सवाल को पेश करने का ढंग ही बताता है कि इन लोगों के दिमाग़ बेहद उलझन में फँसे हुए हैं। वे कहते हैं: "पार्टी का अधिनायकत्व हो, या मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व; नेताओं का अधिनायकत्व (यहां, पार्टी) हो, या जनता का अधिनायकत्व (पार्टी)!" ये लोग कोशिश कर रहे हैं कोई असाधारण बात खोज निकालने की, और इस कोशिश में अपने को हास्यास्पद बना डालते हैं। हर आदमी जानता है कि जनता वर्गों में बंटी होती है; वर्गों से जनता की तुलना केवल उसी समय की जा सकती है जब समाज की उत्पादन-व्यवस्था में अलग-अलग हैसियतों पर आधारित भेदों को भुला कर, अधिकांश आम लोगों की तुलना, समाज की उत्पादन-व्यवस्था में निश्चित हैसियत रखनेवाले अलग-अलग तत्वों से की जाय। हर आदमी जानता है कि आम तौर पर और अधिकतर स्थानों में, कम से कम आधुनिक सभ्य देशों में, वर्गों का नेतृत्व राजनीतिक पार्टियां करती हैं। और हर आदमी यह भी जानता है कि राजनीतिक पार्टियों का संचालन, प्रायः उनके सबसे अधिक माने जानेवाले, प्रभावशाली एवं अनुभवी सदस्यों के कमोबेश स्थायी दल करते हैं; इन सदस्यों को पार्टियों के सबसे ज़िम्मेदार पदों पर चुना जाता है और ये लोग नेता कहलाते हैं। यह सब बहुत साधारण सी बात है। यह सब बहुत सीधी और स्पष्ट बात है। इसकी जगह बात को उलझा कर कहने और पहेली बुझाने की क्या ज़रूरत है? इसका एक कारण तो यह है कि जब इन लोगों पर कठिन समय आया, जब पार्टी को क़ानूनी जीवन से भयानक ग़ैर-क़ानूनी जीवन शुरू करना पड़ा, और उसकी वजह से नेताओं, पार्टियों

और वर्गों के बीच के प्रचलित, सामान्य और सीधे व सरल सम्बंध भंग हो गये, तब शायद ये लोग उलझन में पड़ गये। योरप के दूसरे देशों की तरह, जर्मनी में भी लोग क़ानूनी जीवन के बहुत ज्यादा आदी हो गये थे। वे बाक़ायदा बुलाये गये पार्टी सम्मेलनों में "नेताओं" के स्वतंत्र और नियमित चुनाव के, और पार्लामेंट के चुनावों, आम सभाओं, समाचार पत्रों, ट्रेड यूनियनों व दूसरे संगठनों की भावनाओं, आदि के द्वारा पार्टी के वर्गीय-गठन को बड़े सुगम उपाय से परखने के आदी हो गये थे। जब क्रान्ति के तूफ़ानी बढ़ाव और गृहयुद्ध के विकास के कारण, इन प्रचलित रीतियों की जगह यह आवश्यक हो गया कि जल्दी से क़ानूनी जीवन को छोड़ कर ग़ैर-क़ानूनी जीवन शुरू किया जाय, दोनों ढंग के कामों को मिलाया जाय, और "नेताओं के दलों" को अलग छांट कर, बना कर, उनकी रक्षा करने के "असुविधाजनक" और "ग़ैर-जनवादी" तरीक़े अपनाये जायें, तब इन लोगों का माथा फिर गया और वे कुछ अजीब अलौकिक बकवास करने लगे। हॉलैंड की कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ सदस्य—जो दुर्भाग्य से एक ऐसे छोटे देश में पैदा हुए थे, जहां क़ानूनी जीवन की परम्परा और क़ानूनी अधिकार विशेष रूप से मज़बूत और जमे हुए थे और जिन्होंने कभी क़ानूनी जीवन से ग़ैर-क़ानूनी जीवन में परिवर्तन होते नहीं देखा था—ऐसी परिस्थिति पैदा होने पर बदहवास हो गये, शायद होश-हवास खो बैठे और उन्होंने इन बे-सिर-पैर की बातों के आविष्कार में योग दिया।

दूसरी ओर हम देखते हैं कि "जनता" और "नेता" जैसे आजकल के "फ़ैशनेबल" शब्दों का इन लोगों ने बड़े विचारहीन एवं निरर्थक ढंग से प्रयोग किया है। असल में, इन लोगों ने "नेताओं" को दी जानेवाली अनेक गालियां सुनी हैं और उन्हें याद कर लिया है। इन गालियों में वे "नेताओं" का "जनता" से मुक़ाबला करते हैं। पर मामलात पर सोचना-विचारना, पूरे मसले की एक साफ़ समझ हासिल करना उनके बस के बाहर की बात है।

साम्राज्यवादी युद्ध की समाप्ति पर और उसके बाद, सभी देशों में "नेताओं" और "जनता" का भेद विशेष रूप से साफ़ और तेज़

होकर सामने आया था। इस घटना का क्या कारण था, यह मार्क्स और एंगेल्स १८५२ और १८९२ के बीच कई बार इंगलैंड का उदाहरण देकर समझा चुके थे। उस देश को जो एकाधिकारी स्थान प्राप्त था, उसके फलस्वरूप वहां एक अर्ध-निम्न-पूंजीवादी, अवसरवादी, "मज़दूर अभिजात वर्ग", "जनता" से अलग हो गया था। इस मज़दूर अभिजात वर्ग के नेता बराबर विश्वासघात कर-करके पूंजीपति वर्ग के साथ मिलते जाते थे और प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसके पैसों पर पलनेवाले टुकड़खोर बन गये थे। मार्क्स को इन बदमाशों की घृणा और कोप का भाजन बनने का सम्मान प्राप्त हुआ था, क्योंकि मार्क्स ने खुलेआम उनकी ग़द्दारी का पर्दाफ़ाश किया था। आधुनिक (बीसवीं सदी के) साम्राज्यवाद ने कई उन्नत देशों के लिए विशेषाधिकारी, एकाधिकारी स्थान बना दिया, और इससे दूसरी इन्टरनेशनल में हर जगह एक विशेष ढंग के ग़द्दार, अवसरवादी, सामाजिक-देशाहंकारी नेता पैदा हो गये, जो केवल अपने पेशे के, मज़दूर अभिजात वर्ग के केवल अपने हिस्से के, हितों का समर्थन करते थे। इस बात की वजह से अवसरवादी पार्टियां "जनता" से, यानी आम मेहनतकश लोगों से, उनके अधिकांश से, सबसे कम मजूरी पानेवाले मज़दूरों से, अलग हो गयीं। जब तक इस कोढ़ को दूर करने के लिए संघर्ष नहीं किया जाता, जब तक अवसरवादी, सामाजिक-विश्वासघाती ग़द्दार नेताओं का भंडाफोड़ नहीं किया जाता, उनका प्रभाव नष्ट करके उन्हें निकाला नहीं जाता, तब तक क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग का विजयी होना असम्भव है। और तीसरी इन्टरनेशनल ने इसी नीति का पालन किया है।

इस विषय में इस हद तक जाना कि हम आम तौर पर जनता के अधिनायकत्व का, नेताओं के अधिनायकत्व से मुक़ाबला करने लगें, एक बिलकुल बेहूदा, हास्यास्पद, और बेवकूफ़ी की बात है। सबसे अजीब और दरअसल बात यह है कि पुराने नेताओं को—जो साधारण बातों के बारे में साधारण इनसानों जैसे विचार रखते हैं—बदलकर ("नेताओं को हटाओ" नारे की आड़ में), अस्वाभाविक बकवास करनेवाले कुछ नये नेताओं को लाने की कोशिश हो रही है। जर्मनी में लौफ़ेनबर्ग,

वोल्फ़हाइम, हौर्नर, कार्ल श्रोडर, फ्राइडरिक वेंडेल, और कार्ल एर्लेर* इसी प्रकार के नेता हैं। एर्लेर ने प्रश्न को "और गम्भीर" बनाने की कोशिश की और कहा कि राजनीतिक पार्टियां आम तौर पर अनावश्यक तथा "पूंजीवादी" होती हैं—यह बातें ऐसी भीमाकार बेहूदगियां हैं कि सुननेवाला केवल छिः कह कर खामोश रह जायगा। इससे यह साबित हो जाता है कि जब किसी छोटी ग़लती पर कोई अड़ ही जाता है, उसका औचित्य सिद्ध करने के लिए बड़े गम्भीर तर्क खोजने लगता है, और उसे उसकी *"अन्तिम सीमा"* तक पहुँचा देता है, तो वह ग़लती भीमाकार रूप धारण कर लेती है।

विरोधी दल जिस एकमात्र परिणाम पर पहुँचा है—वह है पार्टी सिद्धान्त तथा पार्टी अनुशासन को तिलांजलि दे देना। और इसका मतलब होता है पूंजीपति वर्ग के हित में मज़दूर वर्ग को एकदम निहत्था

---

* कार्ल एर्लेर ने हैमबर्ग से प्रकाशित होनेवाले पत्र कम्युनिस्टिश्चे अर्बाइटेर-त्साइटुंग के ७ फ़रवरी, १६२० के अंक ३२ में, "पार्टी का तोड़ा जाना" शीर्षक लेख में लिखा था : "पूंजीवादी जनतंत्र को नष्ट किये बिना मज़दूर वर्ग *पूंजीवादी राज्य को नष्ट नहीं कर सकता,* और पूंजीवादी जनतंत्र को वह तब तक नष्ट नहीं कर सकता जब तक कि वह पार्टियों को नहीं मिटाता।"

इस बात को देखकर लैटिन देशों के अधिक मूर्ख संघ-समाजवादियों (सिंडीकलवादियों) और अराजकतावादियों को कुछ "संतोष" हो सकता है कि बड़े ठोस जर्मन, जो स्पष्टतः अपने को मार्क्सवादी समझते हैं, एकदम बेहूदा बातें बकने से नहीं चूकते (कार्ल एर्लेर और कार्ल हौर्नर ने उपरोक्त पत्र में अपने लेखों के द्वारा बड़े ठोस तरीक़े से यह बात ज़ाहिर कर दी है कि वे अपने को ठोस मार्क्सवादी समझते हैं, पर बातें बहुत ही हास्यास्पद ढंग से इतनी बेहूदी करते हैं कि सुनकर विश्वास नहीं होता, और साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि *वे लोग मार्क्सवाद का क-ख-ग भी नहीं समझते*)। मार्क्सवाद को मान लेने से ही कोई ग़लतियों से बरी नहीं हो जाता। हम रूसी लोग इस बात को ख़ास तौर पर जानते हैं, क्योंकि हमारे देश में अक्सर मार्क्सवाद को मानना "फ़ैशन" समझा जाता रहा है।

बना देना। इसका मतलब होता है निम्न-पूंजीवादी बिखराव, अस्थिरता —और लगकर, एक होकर, संगठित होकर काम करने की योग्यता का खतम हो जाना; और यह हालत यदि कुछ दिन तक चलती है तो मज़दूरों का प्रत्येक क्रान्तिकारी आन्दोलन लाज़िमी तौर पर खतम हो जाता है। कम्युनिज्म के दृष्टिकोण से, पार्टी सिद्धान्त को अस्वीकार करने का अर्थ यह होता है कि हम पूंजीवाद के पतन के निकट की अवस्था से (जर्मनी में यही अवस्था है) छलांग मार कर, कम्युनिज्म की शुरूआती या बीच की नहीं, बल्कि एकदम सबसे ऊँची मंज़िल पर पहुँच जाने की कोशिश कर रहे हैं। रूस में (पूंजीपति वर्ग को उलटने के दो वर्ष बाद भी) हम पूंजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन होने के काल की पहली अवस्थाओं में से गुज़र रहे हैं, और समाजवाद कम्युनिज्म की नीचे की अवस्था है। सत्ता पर मज़दूर वर्ग के अधिकार होने के बाद भी वर्ग अभी क़ायम हैं और अभी बरसों तक क़ायम रहेंगे। हो सकता है कि इंगलैंड में, जहां किसान नहीं हैं (लेकिन छोटे मालिक हैं), यह काल और देशों से कुछ छोटा हो जाय। वर्गों को समाप्त करने का मतलब सिर्फ़ ज़मींदारों और पूंजीपतियों को मिटाना नहीं है,—यह काम तो हमने अपेक्षाकृत आसानी से पूरा कर लिया—उसका मतलब छोटे पैमाने पर माल पैदा करनेवालों को भी मिटाना है, और उन्हें ज़बर्दस्ती हटाया या कुचला नहीं जा सकता। हमें उनके साथ मिल-जुलकर रहना होगा। एक लम्बे समय तक, बहुत धीरे-धीरे, बड़ी होशियारी के साथ, संगठनात्मक काम करके ही इन लोगों को फिर से शिक्षित किया जा सकता है और नये सांचे में ढाला जा सकता है (और हमें यह काम करना होगा)। ये लोग मज़दूर वर्ग के चारों ओर एक निम्न-पूंजीवादी वातावरण पैदा कर देते हैं, जो मज़दूरों में भी घर कर जाता है और उन्हें भ्रष्ट कर देता है और उसके कारण मज़दूर बार-बार निम्न-पूंजीवादी ढुलमुलयक़ीनी, फूट, व्यक्तिवाद, और हर्षातिरेक तथा घोर निराशा के बारी-बारी से आनेवाले दौरों में फँस जाते हैं। इस चीज़ का मुक़ाबला करने के लिए आवश्यक है कि मज़दूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी के अन्दर कड़ी से कड़ी केन्द्रीयता और अनुशासन रहे, ताकि मज़दूर वर्ग

की संगठनात्मक भूमिका (और वह उसकी मुख्य भूमिका है) सही तौर पर, सफलतापूर्वक, और विजय के साथ पूरी की जा सके। मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व पुराने समाज की शक्तियों और परम्पराओं के खिलाफ़ ऐसा अनवरत संघर्ष है, जो खूनी और रक्तहीन, हिंसापूर्ण और शान्तिमय, सैनिक और आर्थिक, शिक्षा-सम्बंधी और शासन-सम्बंधी—अनेक रूप धारण करता है। लाखों और करोड़ों इनसानों की आदत की ताक़त एक बहुत भयंकर ताक़त होती है। यदि संघर्ष में तपी हुई एक लौह *पार्टी न होगी, यदि एक ऐसी पार्टी न होगी जिसे अपने वर्ग के सभी* ईमानदार लोगों का विश्वास प्राप्त हो, यदि एक ऐसी पार्टी न होगी जिसमें जनता की भावनाओं को समझने और उस पर प्रभाव डालने की क्षमता हो, तो यह संघर्ष सफलतापूर्वक चलाना असम्भव है। करोड़ों *छोटे-छोटे मालिकों को "हराने" की अपेक्षा केन्द्रीभूत बड़े पूंजीपतियों* को हराना हज़ार-गुना आसान है। पर ये छोटे मालिक अपनी रोज़मर्रा की, साधारण, अदृश्य, आंखों के सामने न पड़नेवाली, लोगों का मनोबल तोड़ देनेवाली कार्रवाइयों से वही हालात पैदा कर देते हैं जिनकी पूंजीपति वर्ग को जरूरत है और जिनसे पूंजीपति वर्ग को अपने को फिर से जमाने में सहायता मिलती है। जो भी मज़दूर वर्ग की पार्टी के लौह अनुशासन को ज़रा भी कमज़ोर करता है (खास कर, यदि वह मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व के समय ऐसा करता है), तो वास्तव में वह मज़दूर वर्ग के खिलाफ़ पूंजीपति वर्ग का साथ देता है।

नेता–पार्टी–वर्ग–जनता के प्रश्न के साथ-साथ हमें ट्रेड यूनियनों के प्रश्न पर विचार कर लेना चाहिए। परन्तु पहले मैं अपनी पार्टी के अनुभव से निकलनेवाले कुछ नतीजे पाठकों के सामने रखना चाहूँगा। हमारी पार्टी में पाये जानेवाले "नेताओं के अधिनायकत्व" पर हमेशा से हमले होते चले आये हैं। मुझे याद आ रहा है कि सबसे पहले १८९५ में मैंने लोगों को ऐसे हमले करते हुए सुना था। तब बाक़ायदा पार्टी तो नहीं बनी थी, पर सेंट-पीटर्सबर्ग में एक केन्द्रीय दल बनने लगा था जो आगे चल कर ज़िलों के दलों का नेतृत्व अपने हाथ में लेनेवाला था। हमारी पार्टी की नवीं कांग्रेस में (अप्रैल १९२० में)

एक छोटा सा विरोधी दल था जो "नेताओं के अधिनायकत्व", "तानाशाह गुट" आदि के खिलाफ़ बोलता था। अतः जर्मनों में पाये जाने वाले "उग्रवादी कम्युनिज्म" के इस "बचपन के मर्ज़" में कोई आश्चर्यजनक, नयी या भयंकर बात नहीं है। मामूली बीमारी से खतरा नहीं होता, और कभी-कभी तो उसके बाद शरीर मज़बूत ही होता है। दूसरी ओर, हमारी पार्टी में, उस समय कभी क़ानूनी और कभी ग़ैर-क़ानूनी काम की आवश्यकता होने के कारण सेनापतियों, यानी नेताओं को, खास तौर पर छिपा कर रखना पड़ता था, और उससे बहुत ही खतरनाक हालत पैदा हो जाती थी। सबसे बुरी बात १९१२ में हुई थी जब मैलिनोव्स्की* नाम का एक सरकारी भेदिया बोल्शेविकों की केन्द्रीय समिति में पहुँच गया था। उसने हमारे बीसियों सबसे अच्छे और सबसे वफ़ादार साथियों के साथ ग़द्दारी की और उन्हें जेलखाने तथा निर्वासन में भिजवाया और उनमें से अनेकों की जीवन-लौ को जल्दी बुझाने में योग दिया। वह यदि और अधिक नुक़सान नहीं कर पाया, तो इसका कारण यही था कि क़ानूनी तथा ग़ैर-क़ानूनी काम के बीच हमने बहुत उचित सम्बंध स्थापित कर रखा था। पार्टी की केन्द्रीय

---

* मैलिनोव्स्की जर्मनी में युद्ध-बन्दी था। बोल्शेविकों की हुकूमत क़ायम हो जाने के बाद जब वह रूस लौटा तो हमारे मज़दूरों ने उस पर मुक़दमा चलाया और उसे फ़ौरन गोली मार दी। मेन्शेविकों ने हमारी इस ग़लती के लिए कि एक सरकारी दलाल हमारी पार्टी की केन्द्रीय समिति का मेम्बर बन गया था, हम पर बड़े कटु हमले किये। पर इसके पहले, केरेन्स्की के शासन में, जब हमने यह मांग की थी कि दूमा के अध्यक्ष रोज़ियांको को गिरफ़्तार करके उस पर मुक़दमा चलाया जाय, क्योंकि उसे युद्ध से पहले भी यह मालूम था कि मैलिनोव्स्की दलाल था, और फिर भी उसने दूमा के त्रुदोविकी दल[१२] के सदस्यों को या मज़दूर सदस्यों को इस बात की इत्तिला नहीं दी थी, तब न तो मेन्शेविकों ने इस मांग का समर्थन किया था, न समाजवादी क्रान्तिकारियों ने ही, यद्यपि वे दोनों ही केरेन्स्की सरकार में शामिल थे; और रोज़ियांको छुट्टा घूमता रहा था और अन्त में देनीकिन से जा मिला था।

समिति का सदस्य और दूमा में हमारा प्रतिनिधि होने के कारण, हमारा विश्वास प्राप्त करने के लिए, मैलिनोव्स्की को क़ानूनी दैनिक समाचार पत्र स्थापित करने में हमारी मदद करनी पड़ी; और इन पत्रों ने ज़ार-शाही के राज में भी मेन्शेविकों के अवसरवाद के ख़िलाफ़ सफलता-पूर्वक संघर्ष किया और उचित झांप-तोप के साथ बोल्शेविक सिद्धान्तों का प्रचार किया। एक हाथ से मैलिनोव्स्की बीसियों सर्वोत्तम बोल्शेविकों को जेलखानों और फाँसीघरों में भिजवाता था, दूसरे हाथ से उसे, क़ानूनी अखबारों के ज़रिए हज़ारों नये बोल्शेविकों को शिक्षित और तैयार करने में मदद देनी पड़ती थी। जिन जर्मन (और अंग्रेज़, अमरीकी, फ्रांसीसी तथा इटालियन) साथियों के सामने इस वक्त प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों के अन्दर क्रान्तिकारी काम करने का ढंग सीखने का सवाल पेश है, उन्हें इस बात की ओर गम्भीरता से ध्यान देना चाहिए।

इसमें शक नहीं कि बहुत से देशों में, और अधिकतर उन्नत देशों में भी, कम्युनिस्ट पार्टियों के भीतर पूंजीपति वर्ग अपने दलाल भेज रहा है, और आगे भी भेजता रहेगा। इस खतरे से लड़ने का एक तरीक़ा यह है कि ग़ैर-क़ानूनी और क़ानूनी काम को होशियारी के साथ मिलाकर चलाया जाय।

[६]

क्या प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों में क्रान्तिकारियों को काम करना चाहिए ?

जर्मन "उग्रवादियों" का विचार है कि जहां तक उनका सम्बंध है, इस प्रश्न का उत्तर है : नहीं, हरगिज़ नहीं। उनके खयाल में, "प्रतिक्रियावादी" तथा "क्रान्ति-विरोधी" ट्रेड यूनियनों को वे गुस्से से लाल-पीले होकर जो गालियां देते हैं (खास तौर पर जैसा कि कार्ल होर्नर ने बड़े "ठोस" और मूर्खतापूर्ण ढंग से दी है), वे इस बात के काफ़ी सबूत हैं कि क्रान्तिकारियों तथा कम्युनिस्टों के लिए लेजियन के ढंग के पीले, सामाजिक-देशाइंकारी, समझौतापरस्त, क्रान्ति-विरोधी ट्रेड यूनियनों में काम करना अनावश्यक, और यहां तक कि अनुचित है।

परन्तु जर्मन "उग्रवादियों" को इस कार्यनीति के क्रान्तिकारीपन में चाहे कितना ही दृढ़ विश्वास हो, वास्तव में यह कार्यनीति बुनियादी तौर पर ग़लत और कोरी बात-बहादुरी और लफ्फ़ाज़ी के सिवा और कुछ नहीं है।

इस बात को स्पष्ट करने के लिए मैं उन्हीं बातों से शुरू करूंगा जो स्वयं हमारा अनुभव है और जो बातें इस पुस्तिका की आम योजना के अनुकूल हैं। बोल्शेविज़्म के इतिहास में और उसकी वर्तमान कार्यनीति में जो कुछ भी आम तौर पर सत्य है, जिन बातों को आम तौर पर और जगहों पर भी लागू किया जा सकता है, जो बातें औरों के लिए

भी आम तौर पर उतनी ही लाज़िमी हैं जितनी हमारे देश के लिए थीं, उन्हें पश्चिमी योरप पर लागू करना ही इस पुस्तिका को लिखने का उद्देश्य है।

नेताओं–पार्टी–वर्ग–जनता का आपसी सम्बंध, और मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व तथा पार्टी का ट्रेड यूनियनों से सम्बंध रूस में इस रूप में सामने आता है : अधिनायकत्व सोवियतों में संगठित मज़दूर वर्ग के हाथों में है। मज़दूर वर्ग का नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) करती है, जिसके सदस्यों की संख्या पिछली पार्टी कांग्रेस (अप्रैल १९२०) के आंकड़ों के अनुसार ६११,००० है। पार्टी के सदस्यों की संख्या अक्तूबर क्रान्ति के पहले और बाद में भी बहुत घटती-बढ़ती रही है, और पहले, यहां तक कि १९१८ और १९१९ में भी, बहुत कम थी। पार्टी के बहुत ज़्यादा बढ़ जाने से हमें डर लगता है, क्योंकि जब किसी पार्टी के हाथों में शासन की बागडोर होती है तो महत्वाकांक्षी, पाखंडी लोग, जो सिर्फ़ गोली मार देने के लायक़ होते हैं, पार्टी के पीछे लग जाते हैं। पिछली बार हमने (१९१९ के जाड़ों में) पार्टी के दरवाज़े एकदम—परन्तु केवल मज़दूरों और किसानों के लिए—खोल दिये थे, जब कि यूदेनिच पेत्रोग्राद से चन्द मील ही दूर रह गया था और डेनीकिन ओरेल में (मास्को से लगभग ३५० वर्स्ट दूर) था, यानी जब कि सोवियत प्रजातंत्र बहुत ही भयानक संकट में था और जब दुःसाहसी व्यक्तियों और महत्वाकांक्षी, पाखंडी और अविश्वसनीय लोगों को कम्युनिस्टों से मिलकर अपना मतलब साधने की आम तौर पर कोई आशा नहीं हो सकती थी (बल्कि उन्हें फांसी पर लटकने की, तरह-तरह की यातनाएं भोगने की अधिक आशंका होती थी)। पार्टी की हर साल कांग्रेस होती है (पिछली कांग्रेस १ हजार सदस्यों के लिए एक प्रतिनिधि के आधार पर हुई थी)। पार्टी का संचालन उन्नीस सदस्यों की एक केन्द्रीय समिति करती है, जिसका चुनाव कांग्रेस में होता है। मास्को में रोज़मर्रा का काम और भी छोटी समितियां चलाती हैं। मिसाल के लिए एक "ओर्गब्यूरो" (संगठन-उपसमिति) है और दूसरी "पोलिटब्यूरो" (राजनीतिक-उपसमिति) है, जिनका चुनाव केन्द्रीय समिति की पूरी बैठक

में होता है और जिनमें से हरेक में केन्द्रीय समिति के पांच-पांच सदस्य होते हैं। ऊपर से देखने में तो यही लगेगा कि सारी ताक़त एक छोटे से गुट के हाथों में सौंप दी गयी है। परन्तु हमारे प्रजातंत्र का कोई राजकीय संगठन, किसी भी महत्वपूर्ण राजनीतिक या संगठनात्मक प्रश्न को, पार्टी की केन्द्रीय समिति से हिदायत लिये बिना तै नहीं करता।

पार्टी अपने काम में सीधे तौर पर ट्रेड यूनियनों पर निर्भर करती है। पिछली कांग्रेस (अप्रैल १६२०) के समय इन ट्रेड यूनियनों के ४० लाख से अधिक सदस्य थे। रस्मी तौर पर ट्रेड यूनियनें ग़ैर-पार्टी संस्थाएं हैं। पर वास्तव में, बहुमत यूनियनों की तमाम कार्यकारी या संचालक समितियों के, और खास तौर पर, ज़ाहिर है, अखिल रूसी ट्रेड यूनियन केन्द्र (ट्रेड यूनियनों की अखिल रूसी केन्द्रीय कांउंसिल) के सदस्य कम्युनिस्ट हैं और वे पार्टी के समस्त आदेशों का पालन करते हैं। इस प्रकार ट्रेड यूनियनों के रूप में, एक रस्मी तौर पर ग़ैर-कम्युनिस्ट, लचकीला, अपेक्षाकृत विस्तृत और बहुत ही शक्तिशाली मज़दूर-वर्गी यंत्र पार्टी के हाथ में रहता है, जिसके द्वारा उसका वर्ग से और जनता से घनिष्ठ सम्बंध क़ायम रहता है और जिसके द्वारा पार्टी के नेतृत्व में वर्ग का अधिनायकत्व काम करता है। यदि हम ट्रेड यूनियनों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क क़ायम न रखते, यदि ट्रेड यूनियनें, न सिर्फ़ आर्थिक मामलों में बल्कि फ़ौजी मामलों में भी, हमें हार्दिक समर्थन न देतीं और आत्म-बलिदान की भावना के साथ काम न करतीं, तो ज़ाहिर है कि हम कभी देश का शासन न चला पाते और दो साल तो क्या, दो महीने भी अधिनायकत्व को क़ायम न रख पाते। व्यवहार में स्वभावतः, इस प्रकार का घनिष्ठ सम्पर्क क़ायम रखने के लिए विविध प्रकार की पेचीदा कार्य-प्रणाली आवश्यक होती है। इसके लिए लोगों को शिक्षित करना पड़ता है, प्रचार करना होता है, अक्सर समय-समय पर न केवल प्रमुख ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं के, बल्कि आम प्रभावशाली ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं के सम्मेलन बुलाने पड़ते हैं। इसके लिए मेन्शेविकों के खिलाफ़ डटकर संघर्ष करना पड़ता है, क्योंकि अभी भी उनके कुछ अनुयायी बाक़ी हैं,—यद्यपि उनकी संख्या बहुत कम है—और मेन्शेविक

लोग जनतंत्र (पूंजीवादी) का सैद्धांतिक रूप से समर्थन करने और ट्रेड यूनियनों की "स्वतंत्रता" (मज़दूर राजसत्ता से स्वतंत्रता !) का उपदेश झाड़ने से लेकर मज़दूर अनुशासन को तोड़ने, आदि तक की, हर प्रकार की सम्भव क्रान्ति-विरोधी तिकड़में उन्हें सिखाते हैं।

हमारा विचार है कि ट्रेड यूनियनों के ज़रिए "जनता" से सम्पर्क रखना काफ़ी नहीं है। क्रान्ति के दौरान में, व्यावहारिक कार्रवाइयों ने ग़ैर-पार्टी मज़दूरों और किसानों के सम्मेलनों को जन्म दिया है, और हम हर तरीक़े से इन सम्मेलनों का समर्थन करने, उन्हें विकसित करने और बढ़ाने की कोशिश करते हैं ताकि उनके ज़रिए हम जनता की भावनाओं को समझ सकें, उसके निकट आ सकें, उसकी ज़रूरतों को महसूस कर सकें, और उसमें से सबसे अच्छे लोगों को छांट कर सरकारी पदों पर नियुक्त कर सकें। हाल में राजकीय नियंत्रण के जन-मंत्रालय को, "मज़दूरों-किसानों के जांच विभाग" में बदलने का जो आदेश-पत्र निकाला गया है, उसके द्वारा इस प्रकार के ग़ैर-पार्टी सम्मेलनों को हक़ दिया गया है कि वे विभिन्न प्रकार की जांच-पड़ताल के वास्ते बनी राजकीय नियंत्रण समितियों के लिए सदस्यों का चुनाव करें।

फिर, ज़ाहिर है कि पार्टी का सारा काम सोवियतों के ज़रिए होता है, जिनमें पेशे और धंधे का भेद भुला कर सभी मेहनतकश लोग शामिल होते हैं। सोवियतों के ज़िला सम्मेलन इस प्रकार की जनवादी संस्थाएं हैं जिनकी मिसाल पूंजीवादी संसार के सर्वोत्तम जनवादी प्रजातंत्रों ने भी कभी नहीं देखी है। इन सम्मेलनों के ज़रिए (जिनकी कार्यवाही की ओर पार्टी अधिक से अधिक ध्यान देती है), तथा देहाती इलाक़ों के विभिन्न पदों पर सदा श्रेणी-सजग मज़दूरों को नियुक्त करके, किसानों के नेता के रूप में मज़दूर वर्ग की भूमिका पूरी की जाती है। और इस तरह शहरी मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व काम करता है। और इसी तरीक़े से धनी, पूंजीवादी, शोषक एवं मुनाफ़ाख़ोर किसानों के ख़िलाफ़ बाक़ायदा संघर्ष चलाया जाता है; इत्यादि।

"ऊपर से देखने में", यानी अधिनायकत्व के अमली रूप के दृष्टिकोण से, मज़दूर राजसत्ता की आम मशीन इसी प्रकार की है।

आशा करनी चाहिए कि अब पाठक यह बात समझ गया होगा कि रूसी बोल्शेविक, जो इस मशीन से परिचित हैं और जिन्होंने पच्चीस वर्ष तक छोटे-छोटे, छिप कर काम करनेवाले चक्रों (सर्किलों) में से इसे बनते देखा है, वे "ऊपर से", या "नीचे से", नेताओं का अधिनायकत्व या जनता का अधिनायकत्व, आदि की इस पूरी बहस को क्यों एकदम हास्यास्पद, बच्चों की सी बकवास समझते हैं; और क्यों उनके खयाल में यह उसी तरह की बहस है मानो कोई यह पूछे कि आदमी की बायीं टांग ज्यादा फ़ायदेमन्द होती है, या दाहिनी बांह।

और हम जर्मन उग्रवादियों के उन बड़े पंडिताऊ, भारी-भरकम और भीषण क्रान्तिकारी उपदेशों को भी इतना ही हास्यास्पद और बच्चों की बातें समझते हैं, जब वे कहते हैं कि प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों में कम्युनिस्ट काम नहीं कर सकते और न उन्हें करना चाहिए, कि कम्युनिस्टों को ऐसे काम से मुँह मोड़ लेने की इजाज़त है, कि उन्हें ट्रेड यूनियनों से अलग हो जाना चाहिए और एक बिलकुल नयी, शुद्ध, बड़े बढ़िया (और सम्भवतः बहुत नौ-उम्र) कम्युनिस्टों द्वारा आविष्कृत, "मज़दूरों की यूनियनें" बनानी चाहिए, इत्यादि।

पूंजीवाद अवश्यम्भावी रूप से समाजवाद को, एक तो मज़दूरों के बीच पाये जानेवाले पेशों और धंधों के वे पुराने भेद विरासत में देता है, जो भेद सदियों के दौरान में पैदा हुए हैं। दूसरे, वह समाजवाद को ट्रेड यूनियनें विरासत में देता है; और ट्रेड यूनियनें बहुत धीरे-धीरे, अनेक वर्षों के बाद ही ऐसी बड़ी और विस्तृत औद्योगिक यूनियनों का रूप धारण कर सकती हैं जो अलग-अलग धंधों पर कम आधारित होंगी (और पूरे उद्योगों की—केवल धंधों या पेशों की नहीं—यूनियनें होंगी)। इसके बाद इन औद्योगिक यूनियनों के ज़रिए लोगों के बीच पाया जानेवाला श्रम-विभाजन धीरे-धीरे दूर किया जायगा, और लोगों के चौमुखी विकास और चौमुखी शिक्षा के लिए उनकी शिक्षा-दीक्षा का ऐसा प्रबंध करना होगा जिससे हरेक काम को जाननेवाले लोग तैयार हो सकें। कम्युनिज्म इस लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है, उसे बढ़ना चाहिए, और यह उस तक अवश्य पहुंचेगा, पर अभी इसमें

बहुत वर्ष लगेंगे। उस पूर्ण रूप से विकसित, पूरी तरह बने हुए और जमे हुए, पूरी तरह फैले हुए और परिपक्व कम्युनिज्म के भावी परिणाम को आज अमल में लाने की कोशिश करना, चार वर्ष के बच्चे को उच्च गणित पढ़ाने के बराबर है।

समाजवाद की रचना की शुरूआत हम काल्पनिक मनुष्यों को, अथवा हमारे लिए विशेष रूप से बनाये गये इनसानों को लेकर नहीं, बल्कि पूंजीवाद से विरासत के रूप में मिले इनसानों को लेकर ही कर सकते हैं (और करनी चाहिए)। सच है कि यह बहुत "कठिन" काम है, पर और किसी ढंग से यह काम करने की बात तो सोची भी नहीं जा सकती।

पूंजीवादी विकास के प्रारम्भिक दिनों में ट्रेड यूनियनों का बनना मज़दूर वर्ग के लिए एक भारी प्रगतिशील क़दम था, क्योंकि उनके ज़रिए मज़दूरों की फूट दूर हुई थी, उनकी निस्सहाय अवस्था का अन्त हुआ था, और उनके वर्ग-संगठन के प्रारम्भिक रूप पैदा हुए थे। जब मज़दूरों के वर्ग-संगठन का सबसे ऊंचा स्वरूप प्रकट हुआ, यानी जब मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी (जो अपना नाम केवल उसी समय चरितार्थ करेगी जब वह नेताओं को वर्ग के साथ जोड़ने और समस्त जनता को एक अविछिन्न इकाई में बांधने की कला सीख लेगी) बनी, तब ट्रेड यूनियनों में, अवश्यम्भावी रूप से, कुछ प्रतिक्रियावादी बातें दिखाई पड़ने लगीं। तब उनमें एक धंधेवाली संकुचित मनोवृत्ति, एक ग़ैर-राजनीतिक मनोवृत्ति, एक निष्क्रियता सी दिखाई देने लगी। परन्तु, मज़दूर वर्ग के विकास का दुनिया में कहीं भी, इसके सिवा कोई और रास्ता नहीं रहा है—और न हो सकता है—कि ट्रेड यूनियनों के ज़रिए, और ट्रेड यूनियनों तथा मज़दूर वर्ग की पार्टी के आपसी सम्बंधों और कार्रवाइयों के ज़रिए ही उसका विकास हो। मज़दूर वर्ग का राजसत्ता पर अधिकार करना, उसके लिए एक बहुत बड़ा प्रगतिशील क़दम है, और पार्टी को पहले से भी अधिक, और केवल पुराने ढंग से नहीं बल्कि नये तरीक़े से, ट्रेड यूनियनों को शिक्षा देनी चाहिए, उनका मार्ग-दर्शन करना चाहिए। ऐसा करते समय पार्टी को यह हमेशा याद रखना

चाहिए कि ट्रेड यूनियनें "कम्युनिज्म के स्कूल" हैं, और अभी बहुत दिनों तक रहेंगे और उनके बिना मज़दूर वर्ग का काम नहीं चल सकता। वे एक ऐसा स्कूल हैं जिसमें मज़दूरों को अपना अधिनायकत्व चलाना सिखाया जाता है। मज़दूरों का यह एक ऐसा आवश्यक संगठन है जिसके द्वारा देश के पूरे आर्थिक जीवन की बागडोर धीरे-धीरे मज़दूर वर्ग के हाथ में (अलग-अलग धंधों के हाथ में नहीं), और बाद में सारे मेहनतकश लोगों के हाथ में सौंप दी जाती है।

ऊपर बताये गये मायनों में, ट्रेड यूनियनों में थोड़ा "प्रतिक्रिया-वादीपन" आ जाना, मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व के मातहत अवश्य-म्भावी है। इस बात को न समझना बताता है कि हमने पूंजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन होने के लिए आवश्यक बुनियादी शर्तों को एक-दम नहीं समझा है। इस "प्रतिक्रियावादीपन" से डरना, इससे कन्नी काटने की कोशिश करना, इसे छलांग मार कर पार करने की सोचना, सबसे बड़ी बेवकूफ़ी होगी, क्योंकि ऐसा करके हम मज़दूर अग्र-दल का वह आवश्यक काम भूल जायेंगे, जो मज़दूर वर्ग और किसानों के सबसे पिछड़े लोगों तथा आम लोगों को शिक्षा-दीक्षा और नयी चेतना देने तथा उन्हें नये जीवन की ओर खींचने में निहित है। दूसरी ओर, मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व को उस समय तक के लिए स्थगित कर देना जब तक कि एक-एक मज़दूर के दिमाग़ से, धंधे और पेशे पर आधारित संकुचित भावनाएं, या धंधों पर आधारित यूनियनों से उत्पन्न होनेवाली मिथ्या धारणाएं दूर न हो जायें, और भी बड़ी ग़लती करना होगा। राजनीति की कला (और अपने कर्तव्य के बारे में कम्युनिस्टों की सही समझ) का गुर यह है कि वह परिस्थिति का सही अनुमान लगाये, और उस घड़ी का पता लगाये कि कब मज़दूर वर्ग का अग्रदल सफलता-पूर्वक सत्ता पर अधिकार कर सकेगा, कब सत्ता पर अधिकार करने के दौरान में और उसके बाद भी उसे मज़दूरों के काफ़ी व्यापक हिस्सों का और ग़ैर-मज़दूर मेहनतकश जनता का काफ़ी समर्थन प्राप्त हो सकेगा, और कब सत्ता पर अधिकार करने के बाद वह मेहनतकश जनता के अधिकाधिक व्यापक स्तरों को शिक्षा-दीक्षा देकर और अपनी ओर

आकर्षित करके अपने शासन को क़ायम रखने, मज़बूत बनाने और फैलाने में कामयाब हो सकेगा।

और भी। रूस से अधिक उन्नत देशों में, ट्रेड यूनियनों के अन्दर हमारे मुल्क से कहीं ज़्यादा प्रतिक्रियावादीपन दिखाई पड़ा है, और यह लाज़िमी था। हमारे मेन्शेविकों को यदि ट्रेड यूनियनों से समर्थन मिला (और बहुत थोड़े यूनियनों से किसी हद तक इस समय भी मिल रहा है), तो इसका कारण धंधों पर आधारित संकुचित मनोवृत्ति, अहंभावना व अवसरवाद ही है। पर पश्चिम के मेन्शेविकों को तो ट्रेड यूनियनों में और भी मजबूत "जगहें" मिल गयी हैं। वहां धंधों पर आधारित यूनियनोंवाला, संकुचित मनोवृत्ति रखनेवाला, स्वार्थी, निर्मम, लोलुप, निम्न-पूंजीवादी "मजदूर अभिजात वर्ग"—जिसका साम्राज्यवादी दिमाग़ है, जो साम्राज्यवादियों के पैसों पर पलता है और जिसे साम्राज्यवादियों ने भ्रष्ट कर रखा है—हमारे देश से कहीं अधिक शक्तिशाली स्तर के रूप में सामने आया है। यह बात निर्विवाद है। पश्चिमी योरप के गौम्पर्स, जूहो, हेंडरसन, मेरहाइम, लेजियन जैसे लोगों के खिलाफ़ लड़ना, मेन्शेविकों से लड़ने से कहीं अधिक कठिन है, क्योंकि मेन्शेविक सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से एकदम एकरूप हैं। इस संघर्ष को बड़ी निर्ममता से चलाना होगा और हर हालत में इस हद तक पहुँचा देना होगा—जहां पर हमने उसे पहुँचा दिया था—ताकि अवसरवाद और सामाजिक-देशाहंकार के सभी कट्टर नेताओं का असर जनता से बिलकुल खतम हो जाय और उन्हें ट्रेड यूनियनों से निकाल दिया जाय। जब तक यह संघर्ष एक निश्चित अवस्था तक नहीं पहुँच जाता, तब तक राजनीतिक सत्ता पर क़ब्ज़ा नहीं किया जा सकता (और न तब तक क़ब्ज़ा करने की कोशिश करनी चाहिए)। यह "निश्चित अवस्था" विभिन्न देशों और विभिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग होगी। प्रत्येक देश के मज़दूर वर्ग के विचारशील, अनुभवी और समझदार राजनीतिक नेता ही यह तै कर सकते हैं कि उनके यहां यह अवस्था है या नहीं। (रूस में इस संघर्ष की सफलता का एक मापदंड १ नवम्बर, १९१७ का विधान-निर्मात्री परिषद

का चुनाव था, जो २५ अक्तूबर, १६१७ की मज़दूर क्रान्ति के चन्द दिन बाद हुआ था। इस चुनाव में मेन्शेविक बुरी तरह हारे थे। उन्हें ७ लाख वोट मिले थे—जो यदि ट्रांसकाकेशिया के वोट जोड़ लिये जायें तो १४ लाख हो जाते थे,—जब कि उनके मुक़ाबले में बोल्शेविकों को ६० लाख वोट मिले थे। कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल नामक पत्र के अंक ७ और ८ में, "विधान-निर्मात्री परिषद के चुनाव और मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व" शीर्षक मेरा लेख देखिए।)

परन्तु "मज़दूर अभिजात वर्ग" के खिलाफ़ यह संघर्ष हम आम मजदूरों के नाम पर और उन्हें अपने साथ ले आने के उद्देश्य से चलाते हैं। अवसरवादी और सामाजिक-देशाहंकारी नेताओं के खिलाफ़ हम संघर्ष इसलिए चलाते हैं ताकि मज़दूर वर्ग हमारे साथ आये। इस सबसे पहले, और सबसे प्रत्यक्ष सत्य को भूल जाना मूर्खता करना होगा। और जर्मन "उग्रवादी" कम्युनिस्ट यही मूर्खता करते हैं जब वे ट्रेड यूनियनों के ऊपरी नेताओं के प्रतिक्रियावादी और क्रान्ति-विरोधी स्वरूप की वजह से झट से इस नतीजे पर पहुँच जाते हैं कि...हमें ट्रेड यूनियनों से अलग हो जाना चाहिए; कि हमें उनके अन्दर काम करने से इनकार कर देना चाहिए; कि हमें नये और बनावटी ढंग के मज़दूर संगठन खड़े करने चाहिए !! यह एक इतनी बड़ी ग़लती है जिसे कभी माफ़ नहीं किया जा सकता और कम्युनिस्टों द्वारा पूंजीपति वर्ग की इससे बड़ी और कोई सेवा हो नहीं सकती। हमारे मेन्शेविक भी, दूसरे सभी अवसरवादी, सामाजिक-देशाहंकारी, काउत्स्कीवादी ट्रेड यूनियनों के नेताओं की भांति ही, "मज़दूर-आन्दोलन के अन्दर पूंजीपतियों के दलालों" के सिवा और कुछ नहीं हैं (मेन्शेविकों को हम सदा यही कहते आये हैं); या यदि अमरीका में डेनियल डेलियोन के अनुयायियों के बढ़िया और एकदम सच कथन को दुहराया जाय तो, वे "पूंजीपति वर्ग के मज़दूर सहायकों" के सिवा और कुछ नहीं हैं। प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों के अन्दर काम करने से इनकार करने का यह मतलब होता है कि हम ऐसे बहुसंख्यक मज़दूरों को, जिनका अभी काफ़ी विकास नहीं हुआ है या जो पिछड़े हुए हैं, प्रतिक्रियावादी नेताओं

के, पूंजीपति वर्ग के दलालों के, या ऐसे "मज़दूरों के असर में छोड़ देंगे जो एकदम पूंजीवादी बन गये हैं।" (देखिए : ब्रिटिश मज़दूरों के बारे में १८५२ में लिखा गया मार्क्स के नाम एंगेल्स का पत्र)

यह बेहूदा "सिद्धान्त" कि कम्युनिस्टों को प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों में काम नहीं करना चाहिए, इस बात को एकदम स्पष्ट कर देता है कि "जनता" पर प्रभाव डालने के बारे में "उग्रवादी" कम्युनिस्ट कितने गम्भीर हैं, और "जनता" के नाम का वे कितना दुरुपयोग करते हैं। यदि तुम "जनता" की सहायता करना चाहते हो, और "जनता" की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त करना चाहते हो, तो तुम्हें कठिनाइयों से नहीं डरना चाहिए, तो तुम्हें इस बात से नहीं घबराना चाहिए कि "नेता" (जो अवसरवादी व सामाजिक-देशाहंकारी होने के कारण प्रायः पूंजीपति वर्ग तथा पुलिस से सम्बंधित होते हैं) तुम्हें तरह-तरह से परेशान करेंगे, तुम्हारा अपमान करेंगे, तुम्हें तंग करेंगे या सतायेंगे। तुम्हें तो जहां भी जनता मिले वहीं जाकर काम करना है। इसके लिए तुम्हें हर प्रकार की कुरबानी करने और कठिनाइयों को दूर करने में समर्थ होना चाहिए। तुम्हें तो ठीक उन्हीं संस्थाओं, समितियों और संगठनों में जाकर प्रचार और शिक्षा-कार्य करना है, जहां मज़दूर या अर्ध-मज़दूर जनता मौजूद है—कोई परवाह नहीं यदि ये संस्थाएं और संगठन घोर से घोर प्रतिक्रियावादी हों। वहां जाकर तुम्हें नियमित रूप से, लगन के साथ, डटकर और धैर्यपूर्वक काम करना है। और जनता तो ट्रेड यूनियनों और (कम से कम, कभी-कभी) मज़दूरों की सहयोग समितियों में ही मिलती है। स्वीडिश भाषा के पत्र, फ़ोल्केत्स डागब्लाद पौलिटिकेन के १० मार्च, १९२० के अंक में प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार १९१७ के अन्त में ब्रिटेन में ट्रेड यूनियनों के मेम्बरों की संख्या ५५ लाख थी, जो १९१८ के अन्त में ६६ लाख तक पहुँच गयी थी, यानी एक साल में १९ प्रतिशत बढ़ गयी थी। अनुमान किया जाता है कि १९१९ के अन्तिम दिनों में यही संख्या ७५ लाख तक चली गयी थी। फ्रांस और जर्मनी के इस काल के तुलनात्मक आंकड़े मेरे पास इस समय मौजूद नहीं हैं, पर निर्विवाद एवं आम तौर पर मान्य

तथ्य बताते हैं कि इन देशों में भी ट्रेड यूनियनों के मेम्बरों की संख्या में बड़ी तेज़ बढ़ती हुई है।

इन बातों से यह चीज़ आयने की तरह साफ़ हो जाती है, और हज़ारों दूसरी बातें भी इस चीज़ को साबित करती हैं, कि वर्ग-चेतना और संगठन की इच्छा आजकल आम मज़दूरों में, "साधारण" मज़दूरों में, और पिछड़े हुए तत्वों में पैदा हो रही है। ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी में लाखों और करोड़ों मज़दूर जीवन में पहली बार, संगठन के पूर्ण अभाव की परिस्थिति से निकलकर, प्रारम्भिक, सबसे सरल, सबसे कम विकसित और (उन लोगों के लिए जिनमें पूंजीवादी-जनवादी मिथ्या धारणाएं अभी तक कूट-कूट कर भरी हैं) सबसे अधिक आसानी से समझ में आनेवाले ढंग का संगठन शुरू कर रहे हैं, यानी ट्रेड यूनियनों का निर्माण कर रहे हैं। परन्तु हमारे अदूरदर्शी उग्रवादी कम्युनिस्ट, जो क्रान्तिकारी होने का दावा करते हैं और "जनता, जनता" का नाम ले-लेकर बहुत चिल्लाते हैं—ट्रेड यूनियनों में काम करने से इनकार करते हैं। और बहाना इसके लिए यह देते हैं कि ये सारी ट्रेड यूनियनें "प्रतिक्रियावादी" हैं। और इसलिए वे अपनी सौ प्रतिशत नयी, सौ प्रतिशत शुद्ध, छोटी-छोटी, "मज़दूर यूनियनों" की ईजाद कर डालते हैं, जिन पर पूंजीवादी-जनवादी मिथ्या धारणाओं का कहीं कोई धब्बा न लगा होगा, जो पेशे तथा धंधे पर आधारित संकुचित यूनियनों के पापों से बिलकुल मुक्त होंगी और जो उनके दावे के मुताबिक, जल्द ही एक बड़ा व्यापक और विशाल संगठन बन जायेंगी (बन जायगी!), और जिसकी मेम्बरी की केवल (सिर्फ़) यही एक शर्त होगी कि मेम्बरी चाहनेवाला मज़दूर "सोवियत व्यवस्था और अधिनायकत्व को स्वीकार करे!!" (देखिए ऊपर, जहां हमने उनकी पुस्तक का एक अंश उद्धृत किया है!)

इससे बड़ी मूर्खता की कल्पना नहीं की जा सकती और न क्रान्ति को उतना बड़ा नुक़सान पहुँचाया जा सकता है, जितना "उग्रवादी" क्रान्तिकारियों ने पहुँचाया है! और देशों की बात जाने दीजिए, यदि आज के रूस में, रूस के पूंजीपति वर्ग पर तथा मित्र राष्ट्रों के पूंजीपति

वर्ग पर अभूतपूर्व विजय प्राप्त करने के ढाई वर्ष बाद भी, हम "अधिनायकत्व को स्वीकार करना" ट्रेड यूनियनों की मेम्बरी की शर्त बना दें, तो हम एक बड़ी ग़लती करेंगे, जनता पर अपना प्रभाव कम कर देंगे, और मेन्शेविकों की मदद करेंगे। क्योंकि कम्युनिस्टों का तो पूरा काम ही *पिछड़े हुए तत्वों को समझाना और उनके बीच काम करना है* और हमें बनावटी तथा बचकाने "उग्रवादी" नारों के ज़रिए जनता और अपने बीच दीवारें नहीं खड़ी करनी है।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं होना चाहिए कि गौम्पर्स, हैंडरसन, जूहो और लेजियन जैसे महानुभाव इन "उग्रवादी" क्रान्तिकारियों के बड़े कृतज्ञ हैं, जो "सिद्धान्त की दृष्टि से" (भगवान बचाये हमें ऐसे "सिद्धान्तों" से!) विरोध करनेवाले जर्मनों की भांति, या "विश्व के औद्योगिक मज़दूर" नामक अमरीकी संस्था के कुछ क्रान्तिकारियों की भांति, प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों से अलग हो जाने का समर्थन करते हैं और उनमें काम करने से इनकार करते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं होना चाहिए कि ये महानुभाव, अवसरवाद के ये "महान नेता", कम्युनिस्टों को ट्रेड यूनियनों में शामिल होने से रोकने के लिए, उन्हें किसी न किसी तरह ट्रेड यूनियनों से निकालने के लिए, यूनियनों के अन्दर उनका काम करना अधिक से अधिक कठिन और तकलीफ़देह बना देने के लिए, उनका अपमान करने के लिए, उन्हें बदनाम करने और सताने के लिए, पूंजीवादी कूटनीति के हर हथकंडे का प्रयोग करेंगे और पूंजीवादी सरकारों की, पंडितों-पुजारियों की, पुलिस और अदालत की मदद लेने से भी नहीं चूकेंगे। हमें इस सबको बर्दाश्त करना होगा, हर चीज़ को सहने के लिए तैयार रहना पड़ेगा, हर तरह के बलिदान के लिए तैयार रहना पड़ेगा और यहां तक कि—यदि ज़रूरत हो तो—तरह तरह की तिकड़मों, चालों, ग़ैर-क़ानूनी तरीक़ों, कन्नी काटने और आंख में धूल झोंकने के उपायों का भी प्रयोग करना होगा। और यह सब केवल इस उद्देश्य से कि हम ट्रेड यूनियनों में घुस सकें, उनके अन्दर रह सकें और वहां हर हालत में अपना कम्युनिस्ट काम जारी रख सकें। ज़ारशाही के राज में १९०५ तक, हमारे सामने काम की "क़ानूनी सम्भावनाएं"

ज़रा भी नहीं थी। परन्तु जब पुलिस के छिपे हुए दलाल जुबातोव ने, क्रान्तिकारियों को फंसाने और उनका विरोध करने के उद्देश्य से मज़दूरों की प्रतिक्रियावादी सभाओं और समितियों का संगठन किया, तो हमारी पार्टी ने अपने मेम्बरों को इन सभाओं और समितियों में काम करने के लिए भेजा (इनमें से एक साथी की मुझे व्यक्तिगत रूप से याद है। यह थे सेंट-पीटर्सबर्ग के प्रमुख मज़दूर कॉमरेड बाबुशकिन, जिनको १९०६ में ज़ार के जनरैलों ने गोली मार दी थी)। इन साथियों ने जनता से सम्पर्क स्थापित किया, प्रचार-कार्य किया और मज़दूरों को सफलता के साथ जुबातोव के दलालों के असर से निकाल लिया।* ज़ाहिर है, योरप में यह काम ज़्यादा कठिन है, क्योंकि वहां क़ानूनों में विश्वास करनेवाली, विधानवादी, पूंजीवादी-जनवादी मिथ्या धारणाएं खास तौर पर और बहुत गहरे जमी हुई हैं। परन्तु यह काम करना है और करना चाहिए, और नियमित रूप से करना चाहिए।

मेरी राय में, प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों में शामिल होने से आम तौर पर इनकार करने की नीति की, तीसरी इन्टरनेशनल की कार्यकारिणी समिति को स्वयं निन्दा करनी चाहिए और कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की अगली कांग्रेस से भी उसकी निन्दा करने को कहना चाहिए (ऐसा करते हुए विस्तार से समझाना चाहिए कि इन यूनियनों में शामिल होने से इनकार करना क्यों बुद्धिमानी की बात नहीं है, और मज़दूर क्रान्ति के पक्ष को उससे कितना भारी नुक़सान पहुँचता है)। खास तौर पर, हॉलैंड की कम्युनिस्ट पार्टी के उन मेम्बरों के आचरण की निन्दा की जानी चाहिए, जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, खुलेआम या छुके-छिपे, इस ग़लत नीति का समर्थन किया है। तीसरी इन्टरनेशनल को दूसरी इन्टरनेशनल के काम करने के ढंग को

* गौम्पर्स, हेंडरसन, जूहो और लेजियन आदि भी जुबातोव जैसे ही हैं, और कुछ नहीं। हमारे जुबातोव से उनमें कुछ अन्तर है तो सिर्फ़ यह कि वे योरपीय कपड़े पहनते हैं, अधिक सभ्य, सुसंस्कृत, और शरीफ़ दिखाई देते हैं, और अपनी घृणित नीति पर जनवादी रंग चढ़ाने में सिद्धहस्त हैं।

छोड़ना चाहिए। तकलीफ़देह सवालों से उसे भागना नहीं चाहिए, न उनसे कन्नी काटना चाहिए, बल्कि बिना किसी लाग-लपेट के ऐसे सभी सवालों को उठाना चाहिए। "स्वतंत्र दल वालों" (जर्मनी की स्वतंत्र सामाजिक-जनवादी पार्टी) के सामने पूरी सचाई सीधे और साफ़ तौर पर रख दी गयी है; उसी प्रकार "उग्रवादी" कम्युनिस्टों के सामने भी पूरी सचाई सीधे और साफ़ तौर पर रख देनी चाहिए।

[७]

क्या हमें पूंजीवादी पार्लामेंटों में भाग लेना चाहिए ?

जर्मन "उग्रवादी" कम्युनिस्ट अत्यधिक तिरस्कार के साथ और गम्भीरता के अत्यधिक अभाव के साथ इस प्रश्न का जवाब देते हैं : नहीं ! उनके तर्क ? ऊपर हम जो अंश उद्धृत कर चुके हैं, उसमें यह लिखा है :

"...फिर से संघर्ष के पार्लामेंटी तरीक़ों में फंस जाना, जब कि ऐतिहासिक एवं राजनीतिक दृष्टि से ये तरीक़े अब पुराने पड़ गये हैं और किसी काम के नहीं रह गये हैं......ये सब बातें हमें एकदम छोड़ देनी चाहिए...।"

कितने दर्प के साथ यह बात कही गयी है ! और यह बात स्पष्टतः ग़लत है। पार्लामेंटवाद में "फिर से फंस जाना !" मानो जर्मनी में सोवियत प्रजातंत्र क़ायम हो चुका है ! और यदि अभी नहीं क़ायम हुआ है तो "फिर से फंस जाने" का ज़िक्र कहां से आ गया ?

पार्लामेंटवाद "ऐतिहासिक दृष्टि से पुराना पड़ गया है और किसी काम का नहीं रह गया है"—प्रचार के ख़याल से यदि यह बात कही जाय तो सही है। पर हर आदमी जानता है कि व्यवहार में यह बात अभी सच नहीं है। पूंजीवाद के बारे में हम दसियों बरस पहले यह घोषणा कर सकते थे कि वह "ऐतिहासिक दृष्टि से पुराना पड़ गया है

और किसी काम का नहीं रह गया है।" और उसमें कोई अन्याय की बात न होती। परन्तु उससे यह बात तो खतम नहीं हो जाती कि अभी हमें बहुत लम्बे समय तक और बहुत डट कर पूंजीवाद की धरती पर लड़ना पड़ेगा। पार्लामेंटवाद "ऐतिहासिक दृष्टि से पुराना पड़ गया है और किसी काम का नहीं रह गया है"—यह बात विश्व इतिहास के दृष्टिकोण से सही है; यानी कहने का मतलब यह कि पूंजीवादी पार्लामेंटवाद का युग समाप्त हो गया है और मजदूर अधिनायकत्व का युग प्रारम्भ हो गया है। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है। परन्तु विश्व इतिहास दशकों व पीढ़ियों में गणना करता है; विश्व इतिहास के मापदंड से मापने पर दस-बीस वर्ष के देर-सबेर से कोई अन्तर नहीं पड़ता। विश्व इतिहास के दृष्टिकोण से दस-बीस वर्ष की देर-सबेर इतनी छोटी चीज होती है कि उसका मोटे तौर पर भी हिसाब नहीं लगाया जा सकता। और यही कारण है कि व्यावहारिक राजनीति को विश्व इतिहास के मापदंड से मापना एक बहुत बड़ी सैद्धान्तिक गलती है।

अच्छा क्या पार्लामेंटवाद "राजनीतिक दृष्टि से पुराना पड़ गया है और किसी काम का नहीं रह गया है?" यह एक बिलकुल दूसरा पहलू है। यदि यह बात सच होती तो "उग्रवादियों" की स्थिति बहुत मजबूत हो जाती। परन्तु इस बात को साबित करने के लिए बहुत छान-बीन के साथ विश्लेषण करना होगा, और "उग्रवादी" तो यह भी नहीं जानते कि विश्लेषण किस ढंग से किया जाता है। कम्युनिस्ट इन्टर-नेशनल के एमस्टर्डम के अस्थायी ब्यूरो की बुलेटिन के फरवरी १६२० के अंक नं० १ में प्रकाशित "पार्लामेंटवाद पर वक्तव्य" में, जिसमें डच उग्रवादियों के अथवा उग्रवादी डचों के विचारों को प्रकट किया गया है, जो विश्लेषण किया गया है, वह बहुत ही खराब है।

पहली बात यह है कि रोजा लुक्जेम्बर्ग तथा कार्ल लीब्कनेख्त जैसे महान राजनीतिक नेताओं के मत के विपरीत, जर्मन "उग्रवादियों" की राय में, जैसा कि हमें मालूम है, पार्लामेंटवाद जनवरी १६१६ में ही "राजनीतिक दृष्टि से पुराना पड़ गया था और किसी काम का नहीं रह गया था।" हम यह भी जानते हैं कि "उग्रवादियों" का यह मत

ग़लत था। और यह तथ्य एक ही बार में इस पूरे विचार को एकदम नष्ट कर देता है कि पार्लामेंटवाद "राजनीतिक दृष्टि से पुराना पड़ गया है और किसी काम का नहीं रह गया है।" अब यह "उग्रवादियों" की ज़िम्मेदारी होती है कि वे यह साबित करें कि जो बात उस वक्त एकदम ग़लत थी, अब क्यों ग़लत नहीं है। इसका वे ज़रा सा भी सबूत नहीं देते और न दे सकते हैं। किसी राजनीतिक पार्टी में कितनी लगन है और अपने वर्ग तथा मेहनतकश जनता के प्रति अपने कर्तव्यों का वह व्यवहार में कैसे पालन करती है, इसे जांचने का एक बहुत ही महत्वपूर्ण और अचूक तरीका यह देखना है कि उस पार्टी का स्वयं अपनी ग़लतियों के प्रति क्या रवैया है। अपनी ग़लती को साफ़ तौर पर स्वीकार करना, उसके कारणों का पता लगाना, जिन परिस्थितियों में वह ग़लती हुई हो उनकी छान-बीन करना, और उसे सुधारने के उपायों पर पूरी तरह से विचार करना—ये एक गम्भीर पार्टी के लक्षण हैं। यही उसका अपना कर्तव्य पालन करने का मार्ग है। इसी तरह उसे पहले वर्ग की और फिर जनता की शिक्षा-दीक्षा करनी चाहिए। अपने इस कर्तव्य का पालन न करके, अपनी स्पष्ट भूलों का अधिक से अधिक सावधानी, अध्यवसाय तथा गम्भीरता से अध्ययन न करके, जर्मनी के (और हॉलैंड के) "उग्रवादियों" ने यह साबित कर दिया है कि वे वर्ग की पार्टी नहीं हैं, बल्कि गुट या चक्र मात्र हैं, वे जनता की पार्टी नहीं हैं, बल्कि बुद्धिजीवियों के तथा चन्द ऐसे मज़दूरों के एक दल हैं, जिन्होंने बुद्धिजीवियों के अवगुणों को ग्रहण कर लिया है।

दूसरे, फ़्रैंकफ़ुर्ट के "उग्रवादियों" की उसी पुस्तिका में, जिसे हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं, यह भी लिखा है:

"...जो लाखों मज़दूर आज भी केन्द्र (कैथोलिक 'केन्द्रीय' पार्टी) की नीति का समर्थन करते हैं, वे सबके सब क्रान्ति-विरोधी हैं। देहाती मज़दूरों में से क्रान्ति-विरोधी सैनिकों की बटालियनें आती हैं।" (पुस्तिका का ३रा पृष्ठ)

हर वाक्य यही बताता है कि इस कथन में बड़ी अतिशयोक्ति से काम लिया गया है। पर, इसमें कही गयी बुनियादी बात निर्विवाद रूप

से सच है; और "उग्रवादियों" ने इसे मानकर साफ़ तौर पर अपनी ग़लती साबित कर दी है। जब लाखों मजदूर, उनकी पूरी की पूरी बटालियनें, अभी तक न सिर्फ़ पार्लामेंटवाद के पक्ष में हैं, बल्कि एकदम "क्रान्ति-विरोधी" हैं, तब कोई यह कैसे कह सकता है कि पार्लामेंटवाद "राजनीतिक दृष्टि से पुराना पड़ गया है और किसी काम का नहीं रह गया है?" जाहिर है कि जर्मनी में अभी भी पार्लामेंटवाद पुराना नहीं पड़ा है। जाहिर है कि जर्मनी में "उग्रवादियों" ने अपनी इच्छा को, अपने राजनीतिक सैद्धान्तिक रुख को, सही वास्तविकता मान लिया है। यह क्रान्तिकारियों के लिए सबसे खतरनाक ग़लती है। रूस में बहुत लम्बे काल तक ज़ारशाही का खूंखार और बर्बर शासन विविध प्रकार के क्रान्तिकारियों को उत्पन्न करता रहा है और इन क्रान्तिकारियों ने आश्चर्यजनक साधना, उत्साह, वीरता और दृढ़ता का परिचय दिया है। इसलिए रूस में हमने क्रान्तिकारियों की यह ग़लती बहुत निकट से देखी है, बड़े ध्यानपूर्वक उसका अध्ययन किया है, और हमें उसका प्रत्यक्ष ज्ञान है, और इसलिए दूसरों में भी हम इस दोष को बहुत जल्दी और साफ़ देख सकते हैं। जाहिर है कि जर्मनी में कम्युनिस्टों के लिए पार्लामेंटवाद "राजनीतिक दृष्टि से पुराना पड़ गया है और किसी काम का नहीं रह गया है", लेकिन—और यही असली बात है—हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि जो हमारे लिए पुराना पड़ गया है, वह वर्ग के लिए भी पुराना पड़ गया होगा, वह जनता के लिए भी पुराना पड़ गया होगा। यहां पर हम फिर देखते हैं कि "उग्रवादी" लोग तर्क करना नहीं जानते, वर्ग की पार्टी की तरह, जनता की पार्टी की तरह काम करना नहीं जानते। तुम्हें जनता के स्तर पर, वर्ग के पिछड़े हुए भाग के स्तर पर नहीं पहुँच जाना चाहिए। यह बात निर्विवाद है। तुम्हें जनता को कटु सत्य बताना चाहिए। तुम्हें उसकी पूंजीवादी-जनवादी और पार्लामेंटवादी मिथ्या धारणाओं को मिथ्या धारणाएं कहना चाहिए। परन्तु साथ ही, तुम्हें इस बात को भी बड़ी गम्भीरता के साथ देखना चाहिए कि पूरे वर्ग की (और केवल उसके कम्युनिस्ट अग्रदल की नहीं) और सारी मेहनतकश जनता की (और केवल आगे बढ़े हुए तत्वों की

नहीं) वर्ग-चेतना की वास्तविक हालत क्या है और वे अभी कितना तैयार हो पाये हैं।

"लाखों" और "पूरी बटालियनों" की बात जाने दीजिए, यदि औद्योगिक मज़दूरों का एक अच्छा अल्पमत भी कैथोलिक पादरियों के पीछे चलता है, और उसी प्रकार यदि देहाती मज़दूरों का एक खासा अल्पमत ज़मींदारों और कुलकों (धनी किसानों) के पीछे चलता है, तो इससे निस्सन्देह यह निष्कर्ष निकलता है कि जर्मनी में पार्लामेंटवाद अभी भी राजनीतिक दृष्टि से पुराना नहीं पड़ा है, और यह कि पार्लामेंट के चुनावों में तथा पार्लामेंट के मंच से होनेवाले संघर्षों में भाग लेना क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की पार्टी का आवश्यक कर्तव्य है, और उनमें भाग लेने का उद्देश्य ठीक यही है कि पार्टी अपने वर्ग के पिछड़े हुए लोगों को शिक्षित कर सके, और देहात की पिसी हुई, अज्ञान जनता को जहालत से निकाल कर ज्ञान के प्रकाश में ला सके। जब तक तुम इस योग्य नहीं हो जाते कि पूंजीवादी पार्लामेंट को और दूसरी हर प्रकार की प्रतिक्रियावादी संस्थाओं को भंग कर सको, तब तक तुम्हें इन संस्थाओं के अन्दर काम करना होगा, और वह ठीक इसलिए कि यहां अभी तुम्हें ऐसे अनेक मज़दूर मिलेंगे जिन्हें पादरियों ने और देहाती जीवन की जहालत ने धोखे में डाल रखा है; और यदि तुम ऐसा नहीं करते हो, तो केवल गाल बजानेवाले बन कर रह जाओगे।

तीसरे, ये "उग्रवादी" कम्युनिस्ट हम बोल्शेविकों की तारीफ़ में बहुत कुछ कहते हैं। कभी-कभी मन में आता है कि इनसे यह कहा जाय कि भाई साहब हमारी तारीफ़ कम करो और बोल्शेविकों की कार्यनीति को समझने की कोशिश ज्यादा करो, उनसे अपने को परिचित बनाने की कोशिश ज्यादा करो! हम लोगों ने सितम्बर-नवम्बर १९१७ में रूस की पूंजीवादी पार्लामेंट, विधान-निर्मात्री परिषद के चुनाव में भाग लिया था। क्या उस समय हमारी कार्यनीति सही थी? यदि नहीं, तो साफ़-साफ़ यह बात कहो और उसे साबित करो, क्योंकि अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिज्म की एक सही कार्यनीति बनाने के लिए यह करना अत्यन्त आवश्यक है। और यदि वह कार्यनीति सही थी, तो उससे कुछ

निष्कर्ष निकालो ! जाहिर है कि रूस की परिस्थितियों को पश्चिमी योरप की परिस्थितियों के बराबर नहीं रखा जा सकता। फिर भी, जहां तक इस विशेष प्रश्न का सम्बंध है कि इस वक्तव्य का क्या अर्थ है कि "पार्लामेंटवाद पुराना पड़ गया है और किसी काम का नहीं रह गया है"—हमारे अनुभव पर ध्यानपूर्वक विचार करना आवश्यक है। कारण कि यदि ठोस अनुभव को ध्यान में नहीं रखा जाता, तो ऐसे सूत्र बड़ी आसानी से निरर्थक शब्द बन कर रह जाते हैं। क्या सितम्बर-नवम्बर १९१७ में, रूस के हम बोल्शेविकों को, पश्चिम के किन्हीं भी कम्युनिस्टों से कहीं अधिक यह *समझने का अधिकार नहीं था* कि पार्लामेंटवाद राजनीतिक दृष्टि से रूस में पुराना पड़ गया है ? जाहिर है कि हमें ज्यादा अधिकार था, क्योंकि यहां सवाल यह नहीं है कि पूंजीवादी पार्लामेंट बहुत दिनों से क़ायम है या कम दिनों से, बल्कि देखना यह है कि मेहनतकश जनता सोवियत व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए और पूंजीवादी-जनवादी पार्लामेंट को भंग कर देने के लिए (या उसे भंग हो जाने देने के लिए) किस हद तक (सैद्धान्तिक, राजनीतिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से) तैयार है। यह बात एक बिलकुल निर्विवाद एवं पूर्णतः सिद्ध ऐतिहासिक सत्य है कि कई विशेष कारणों से, रूस के शहरी मज़दूर और सैनिक तथा किसान, सितम्बर-नवम्बर १९१७ में सोवियत व्यवस्था को स्वीकार करने तथा सबसे जनवादी पूंजीवादी पार्लामेंट को भंग करने के लिए विशेष रूप से तैयार थे। फिर भी बोल्शेविकों ने विधान-निर्मात्री का परिषद बहिष्कार नहीं किया, बल्कि मज़दूर वर्ग के राजनीतिक सत्ता पर अधिकार करने के पहले भी और बाद में भी उसके चुनावों में भाग लिया। और मैं आशा करने का साहस करता हूँ कि अपने उपरोक्त लेख में, जिसमें रूस की विधान-निर्मात्री परिषद के चुनावों के आंकड़ों का विस्तृत विश्लेषण है, मैंने यह बात साबित कर दी है कि इन चुनावों से बहुत ही मूल्यवान (और मज़दूर वर्ग के लिए बहुत ही लाभदायक) राजनीतिक नतीजे निकले थे।

इससे जो निष्कर्ष निकलता है, वह एकदम निर्विवाद है : इससे यह साबित हो जाता है कि सोवियत प्रजातंत्र की विजय के चन्द हफ्ते

पहले भी, और यहां तक कि उसकी विजय के बाद भी, एक पूंजीवादी जनवादी पार्लामेंट के चुनाव में भाग लेने से क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग को नुक़सान नहीं पहुँचता; बल्कि वास्तव में, उससे पिछड़ी हुई जनता को यह समझाने में मदद मिलती है कि ऐसी पार्लामेंटों को भंग कर देना क्यों ज़रूरी है। उससे इन पार्लामेंटों को सफलतापूर्वक भंग करने में मदद मिलती है; उससे पूंजीवादी पार्लामेंटवाद को "राजनीतिक दृष्टि से पुराना और बेकाम" बना देने में मदद मिलती है। इस अनुभव को देखने से इनकार करना, और फिर भी कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल से सम्बंध रखने का दावा करना—उस इन्टरनेशनल से जिसे अन्तरराष्ट्रीय ढंग से अपनी कार्यनीति निर्धारित करनी है (संकुचित, एक-राष्ट्रीय नीति नहीं बनानी है, बल्कि अन्तरराष्ट्रीय नीति बनानी है)—यह दुनिया में सबसे बड़ी ग़लती करना है। यह अन्तरराष्ट्रीयतावाद को शब्दों में मानना, पर वास्तव में उसे तिलांजलि दे देना है।

अब "डच-उग्रवादियों" के उन तर्कों पर भी विचार कर लिया जाय, जो उन्होंने पार्लामेन्टों में भाग न लेने के पक्ष में दिये हैं। उपरोक्त "डच" वक्तव्यों में सबसे महत्वपूर्ण वक्तव्य नं० ४ है, जो इस प्रकार है :

"जब उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था टूट गयी है और समाज क्रान्ति की अवस्था में है, तब पार्लामेंटी काम का महत्व जनता की कार्रवाइयों की तुलना में धीरे-धीरे कम होता जाता है। इसलिए, जब पार्लामेंट क्रान्ति-विरोध का केन्द्र और साधन बन जाती है, और दूसरी ओर, जब मेहनतकश वर्ग सोवियतों के रूप में अपनी सत्ता के यंत्रों की रचना कर लेता है, तब यह भी आवश्यक हो सकता है कि हम हर तरह की पार्लामेंटी कार्रवाई से अलग रहें और उसमें भाग न लें।"

जाहिर है कि पहला वाक्य ग़लत है, क्योंकि जनता की कार्रवाई—उदाहरण के लिए एक बड़ी हड़ताल—केवल क्रान्ति के दौरान में या क्रान्तिकारी परिस्थिति में ही नहीं, बल्कि हर समय पार्लामेंटी कार्रवाई से अधिक महत्वपूर्ण होती है। यह स्पष्टतः असंगत और ऐतिहासिक एवं राजनीतिक दृष्टि से ग़लत तर्क इस बात को बिलकुल साफ़ कर देता है

कि इन वक्तव्यों के लेखक-गण, जहां तक ग़ैर-क़ानूनी संघर्ष के साथ क़ानूनी संघर्ष को मिलाने का महत्व है, न तो आम योरपीय अनुभव को (१८४८ और १८७० की क्रान्तियों के पहले के फ्रांसीसी अनुभव को, १८७८–९० के जर्मन अनुभव को, इत्यादि) ध्यान में रखते हैं, न रूसी अनुभव को (देखिए ऊपर)। यह सवाल आम तौर पर भी बहुत महत्व का है, और खास तौर पर इसलिए महत्वपूर्ण बन जाता है, क्योंकि अब सभी सभ्य एवं उन्नत देशों में वह समय बहुत तेज़ी से नज़दीक आ रहा है जब इन दो प्रकार के संघर्षों को इस तरह से मिलाना क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की पार्टी के लिए आवश्यक हो जायगा—बल्कि आंशिक रूप से तो यह अभी ही हो गया है। इसका कारण यह है कि प्रजातांत्रिक सरकारों और पूंजीवादी सरकारों द्वारा कम्युनिस्टों का आम तौर पर भीषण दमन किये जाने के फलस्वरूप, जिसके दौरान में ये सरकारें क़ानून को हर तरह तोड़ डालती हैं (अमरीका की ही मिसाल देखिए), मज़दूर वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग के बीच गृहयुद्ध की परिस्थिति परिपक्व होती जा रही है, और उसके छिड़ने की घड़ी निकट आती जा रही है। इस बहुत महत्वपूर्ण सवाल को डचों ने, और आम तौर पर सभी उग्रवादियों ने बिलकुल नहीं समझा है।

जहां तक दूसरे वाक्य का प्रश्न है, पहली बात यह है कि इतिहास की दृष्टि से वह ग़लत है। हम बोल्शेविकों ने घोर से घोर प्रतिक्रियावादी पार्लामेंटों में भाग लिया है, और अनुभव ने इसे साबित कर दिया है कि उनमें भाग लेना, क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की पार्टी के लिए न केवल लाभदायक बल्कि आवश्यक था। और इसकी सबसे अधिक आवश्यकता रूस की पहली पूंजीवादी क्रान्ति (१९०५) के ठीक बाद प्रतीत हुई थी, ताकि दूसरी पूंजीवादी क्रान्ति (फरवरी १९१७) के लिए, और फिर समाजवादी क्रान्ति के लिए तैयारी की जा सके। दूसरे, यह वाक्य भयंकर रूप से असंगत है। यदि पार्लामेंट क्रान्ति-विरोध का साधन और "केन्द्र" बन गयी है (वास्तव में पार्लामेंट कभी "केन्द्र" नहीं बनी है और न बन सकती है, पर जाने दीजिए इस बात को), और मज़दूर सोवियतों के रूप में अपनी सत्ता के यंत्र की रचना कर रहे हैं,

तो इससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि ऐसी परिस्थिति में मज़दूरों को, पार्लामेंट के खिलाफ़ सोवियतों के संघर्ष के लिए, सोवियतों द्वारा पार्लामेंट के भंग किये जाने के लिए, सैद्धान्तिक, राजनीतिक और तकनीकी तै .रो करनी चाहिए। परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि क्रान्ति-विरोधी पार्लामेंट के अन्दर एक सोवियत-पक्षी विरोधी दल के रहने से इस पार्लामेंट को भंग करने में अड़चन पड़ेगी, या उसमें सहायता नहीं मिलेगी। डेनीकिन और कोलचक के खिलाफ़ हमारे संघर्ष के दौरान में हमें कभी यह नहीं प्रतीत हुआ था कि दुश्मनों के खेमे में एक सोवियत-पक्षी, मज़दूर-पक्षी विरोधी दल का होना या न होना हमारी सफलता के लिए कोई महत्व नहीं रखता। हम अच्छी तरह जानते हैं कि ५ जनवरी १६१८ में विधान-परिषद को भंग करने में इस बात से कोई अड़चन पड़ना तो दूर रहा, बल्कि सचमुच बड़ी मदद मिली कि क्रान्ति-विरोधी विधान-परिषद में, जिसे भंग किया जानेवाला था, एक सुसंगत, बोल्शेविक सोवियत-पक्षी विरोधी दल था और साथ ही एक असंगत, उग्र समाजवादी-क्रान्तिकारी, सोवियत-पक्षी विरोधी दल भी था। इन वक्तव्यों के लेखक-गण यदि सभी नहीं, तो कम से कम अनेक क्रान्तियों का यह अनुभव बिलकुल भूल गये हैं कि क्रान्ति के समय प्रतिक्रियावादी पार्लामेंट के बाहर होनेवाले जनता के संघर्षों के साथ ही, यदि पार्लामेंट के अन्दर क्रान्ति से सहानुभूति रखनेवाला (या और भी अच्छा हो, यदि वह प्रत्यक्ष रूप से क्रान्ति का समर्थक हो) एक विरोधी दल भी हो, तो उससे बड़ी मदद मिलती है। डच, और आम तौर पर सभी उग्र-वादी, उन लकीर के फ़कीर क्रान्तिकारियों की तरह तर्क करते हैं जिन्होंने कभी किसी वास्तविक क्रान्ति में भाग नहीं लिया है, या जिन्होंने कभी क्रान्तियों के इतिहास पर गम्भीरता से सोचा नहीं है, अथवा जो किसी प्रतिक्रियावादी संस्था को अपने द्वारा "अस्वीकार किये जाने" पर बड़े भोलेपन के साथ यह मान लेते हैं मानो वह बहुत से बाह्य कारणों के सम्मिलित प्रहार के कारण सचमुच में नष्ट हो गयी हो।

किसी नये राजनीतिक (और केवल राजनीतिक ही नहीं) विचार को बदनाम करने और नुक़सान पहुँचाने का सबसे कारगर तरीक़ा यह है

कि समर्थन करने के नाम पर उस विचार को इतना बढ़ा-चढ़ा कर रखा जाय कि वह मूर्खता की हद तक पहुँच जाय। क्योंकि प्रत्येक सत्य को (जैसा बड़े डीट्जगेन ने कहा था) बढ़ा-चढ़ा कर, उसे अतिशयोक्ति के साथ पेश करके, उसे वास्तविक सम्भावना की सीमा से आगे ले जाकर मूर्खता में बदला जा सकता है, बल्कि कहना चाहिए कि ऐसा करने पर प्रत्येक सत्य लाज़िमी तौर पर मूर्खता में बदल जाता है। इस नवीन सत्य के बारे में कि सरकार का सोवियत स्वरूप पूंजीवादी-जनवादी पार्लामेंटों से बेहतर है, डच और जर्मन उग्रवादी इसी तरह का उल्टा काम कर रहे हैं। इतनी बात तो समझ में आती है कि यदि कोई पुराने विचार का समर्थन करता है, या आम तौर पर यह मानता है कि पूंजीवादी पार्लामेंटों में किसी भी हालत में भाग लेने से इनकार करना अनुचित है, तो वह ग़लती करता है। मैं यहां उन परिस्थितियों को नहीं बता सकता जिनमें बहिष्कार करना लाभदायक होता है, क्योंकि इस पुस्तिका का दायरा इससे कहीं छोटा है। यहां हम अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट कार्यनीति के कुछ तात्कालिक प्रश्नों के सम्बंध में ही रूसी अनुभव का अध्ययन करना चाहते हैं। रूसी अनुभव में हमें बोल्शेविकों द्वारा बहिष्कार का एक सही और सफल उदाहरण (१६०५ में) मिलता है और एक गलत उदाहरण भी (१६०६ में) मिलता है। पहले उदाहरण का विश्लेषण कीजिए तो पता चलता है कि बोल्शेविकों ने प्रतिक्रियावादी पार्लामेंट का बहिष्कार ऐसे समय किया था जब जनता की ग़ैर-पार्लामेंटी, क्रान्तिकारी कार्रवाइयां (विशेष कर हड़तालें) असामान्य तेज़ी से बढ़ रही थीं, जब मज़दूरों और किसानों का एक भी हिस्सा किसी रूप में भी प्रतिक्रियावादी सरकार का समर्थन नहीं कर रहा था, और जब हड़तालों तथा किसान आन्दोलन के द्वारा क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग का, आम पिछड़ी जनता पर असर बढ़ रहा था; और ऐसी परिस्थिति में बहिष्कार करके बोल्शेविकों ने प्रतिक्रियावादी सरकार को एक प्रतिक्रियावादी पार्लामेंट बुलाने से रोकने में सफलता प्राप्त की थी। बिलकुल साफ़ बात है कि इस अनुभव को आज के योरप की हालतों पर लागू नहीं किया जा सकता। साथ ही यह भी बिलकुल साफ़ है, और ऊपर की बहस से यह

बात साबित हो जाती है, कि पार्लामेंटों में भाग लेने से इनकार करने की नीति का समर्थन करके—भले ही वे अधकचरे ढंग से यह करते हों—डच तथा अन्य "उग्रवादी" एक बुनियादी तौर पर ग़लत और क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग के उद्देश्य के लिए हानिकारक बात कर रहे हैं।

पश्चिमी योरप और अमरीका में मज़दूर वर्ग के आगे बढ़े हुए क्रान्तिकारी सदस्यों के लिए पार्लामेंट विशेष रूप से घृणा की वस्तु बन गयी है। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है। और वह समझ में भी आती है, क्योंकि युद्ध के दिनों में और उसके बाद, पार्लामेंटों के समाजवादी तथा सामाजिक-जनवादी सदस्यों की अधिकांश संख्या का जैसा व्यवहार रहा, उससे अधिक नीच, घृणित और विश्वासघाती व्यवहार की कल्पना करना भी कठिन है। परन्तु, इस आम तौर पर पहचानी हुई बुराई से लड़ने के ढंग पर विचार करते समय यदि हम इस भावना के वशीभूत हो गये, तो वह न केवल एक ग़लत बात होगी, बल्कि एक मुजरिमाना हरकत होगी। पश्चिमी योरप के बहुत से देशों में आजकल क्रान्तिकारी भावना, हम कह सकते हैं कि एक "नयी चीज़", एक ऐसी "अनोखी चीज़" के रूप में सामने आयी है, जिसका लोग बहुत दिनों से अधीर होकर इन्तज़ार कर रहे थे; और शायद यही कारण है कि लोग इतनी आसानी से इस भावना के वशीभूत हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जनता में क्रान्तिकारी भावना के बिना, इस भावना के बढ़ने में सहायता पहुँचानेवाली परिस्थितियों के अभाव में, क्रान्तिकारी कार्यनीति को कभी कार्य-रूप में परिणत नहीं किया जा सकता। परन्तु रूस में हमने एक बहुत लम्बे, तकलीफ़देह, और खूनी अनुभव से यह बात सीखी है कि क्रान्तिकारी कार्यनीति केवल क्रान्तिकारी भावना के भरोसे नहीं बनायी जा सकती। कार्यनीति निर्धारित करने के लिए पहले राज्य-विशेष की (उसके आस-पास के राज्यों की तथा संसार भर के राज्यों की) सारी वर्ग-शक्तियों का गम्भीर और सर्वथा वैज्ञानिक मूल्यांकन करना आवश्यक है। साथ ही क्रान्तिकारी आन्दोलनों का अनुभव भी ध्यान में रखना जरूरी है। केवल पार्लामेंटी अवसरवाद पर गालियों की बौछार करके, केवल पार्लामेंटों में भाग लेने

का विरोध करके, अपना "क्रान्तिकारीपन" साबित कर देना बहुत आसान है। और चूंकि यह बहुत आसान काम है, इसीलिए वह एक कठिन समस्या का, एक बहुत ही कठिन समस्या का हल नहीं हो सकता। किसी योरपीय पार्लामेंट में एक सचमुच क्रान्तिकारी पार्लामेंटी दल तैयार करना रूस से ज्यादा कठिन काम है; यह बात ठीक है। पर वह इस आम सत्य का ही एक विशेष अंग है कि १६१७ की—इतिहास की दृष्टि से बहुत ही अनोखी और विशेष—परिस्थिति में रूस के लिए समाजवादी क्रान्ति शुरू कर देना आसान था, परन्तु क्रान्ति को जारी रखना और उसे पूर्णता तक पहुँचाना उसके लिए योरपीय देशों से अधिक कठिन होगा। १६१८ के आरम्भ में ही मैंने इस बात की ओर संकेत किया था, और पिछले दो वर्ष के अनुभव ने उसे पूरी तरह साबित कर दिया है। रूस की कुछ विशेष परिस्थितियां इस समय पश्चिमी योरप में मौजूद नहीं हैं; और ऐसी या इनसे मिलती-जुलती परिस्थितियों का फिर दुहराया जाना आसान नहीं है। उदाहरण के लिए : १) क्रान्ति के फलस्वरूप, यह संभावना थी कि साम्राज्यवादी युद्ध को समाप्त कर देने के सवाल के साथ सोवियत क्रान्ति को जोड़ा जा सके, और वह भी ऐसी हालत में जब कि युद्ध ने मज़दूरों और किसानों का एकदम कचूमर निकाल दिया था; २) साम्राज्यवादी डाकुओं के दो बड़े संसारव्यापी दलों के आपसी मर्मान्तक संघर्ष से कुछ वक्त तक फ़ायदा उठाने की सम्भावना थी और ये दोनों दल अपने सोवियत शत्रु के खिलाफ़ एक होने में असमर्थ थे; ३) देश के बहुत ही विस्तृत आकार के कारण और यातायात के साधनों के बहुत पिछड़े हुए होने की वजह से एक अपेक्षाकृत लम्बा गृहयुद्ध चलाना सम्भव था; ४) किसानों में एक इतना गहरा पूंजीवादी-जनवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन चल रहा था कि मज़दूर वर्ग की पार्टी ने किसान पार्टी (समाजवादी-क्रान्तिकारी पार्टी, जिसके अधिकतर सदस्य निश्चित रूप से बोल्शेविज्म के विरोधी थे) की क्रान्तिकारी मांगों को, राजसत्ता पर मज़दूर वर्ग के अधिकार करने के फलस्वरूप, तुरन्त पूरा कर दिया। कुछ और कारणों के अलावा, इन वजहों से पश्चिम योरप के लिए समाजवादी क्रान्ति को शुरू करना हम से कठिन होगा। क्रान्तिकारी

उद्देश्यों के लिए प्रतिक्रियावादी पार्लामेंट का उपयोग करने के कठिन काम को छोड़कर, इस कठिनाई से "बचने" की कोशिश करना सरासर बचपन है। तुम एक नया समाज बनाना चाहते हो, और फिर भी प्रतिक्रियावादी पार्लामेंट में पक्के, वफ़ादार और बहादुर कम्युनिस्टों का एक अच्छा पार्लामेंटी दल बनाने की कठिनाइयों से घबराते हो! यह बचपन नहीं तो और क्या है? यदि जर्मनी में कार्ल लीब्कनेख्त और स्वीडन में ज़ेड होगलुंड नीचे से जनता का समर्थन न मिलने पर भी, प्रतिक्रियावादी पार्लामेंटों के सचमुच क्रान्तिकारी उपयोग की मिसालें पेश कर सके, तो कोई कैसे कह सकता है कि एक तेज़ी से बढ़ती हुई, क्रान्तिकारी जनपार्टी, युद्ध के बाद की उस परिस्थिति में जब जनता के भ्रम टूट रहे हों और उसका क्रोध बढ़ रहा हो, खराब से खराब पार्लामेंट में भी एक कम्युनिस्ट दल ठोक-पीट कर नहीं बना सकती? पश्चिम योरप के पिछड़े हुए आम मज़दूर और—उनसे भी ज़्यादा—छोटे किसान चूंकि रूस की तुलना में, पूंजीवादी-जनवादी एवं पार्लामेंटी मिथ्या धारणाओं के कहीं अधिक वशीभूत हैं, और ठीक यही कारण है कि पूंजीवादी पार्लामेंट जैसी संस्थाओं के अन्दर से ही कम्युनिस्ट एक ऐसा लम्बा और अनवरत, तथा कठिनाइयों के सामने कभी सिर न झुकानेवाला संघर्ष चला सकते हैं (और ज़रूर चलाना चाहिए) ताकि उन मिथ्या धारणाओं का पर्दाफ़ाश किया जा सके, उनका मुक़ाबला किया जा सके और उन पर विजय प्राप्त की जा सके।

जर्मन "उग्रवादी" अपनी पार्टी के बुरे "नेताओं" की शिकायतें करते हैं, निराश हो जाते हैं और यहां तक कि "नेताओं" को "मानने से इनकार करने" की बेहूदगी तक करने लगते हैं। परन्तु जब परिस्थितियां ऐसी हैं कि "नेताओं" को अक्सर छिपा कर रखना पड़ता है, तब अच्छे, भरोसे के, अनुभवी और प्रभावशाली "नेताओं" का विकास होना बहुत कठिन हो जाता है; और इन कठिनाइयों को सफलतापूर्वक तब तक दूर नहीं किया जा सकता जब तक कि क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी कामों को मिलाया नहीं जाता और जब. अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ पार्लामेंट के क्षेत्र में भी "नेताओं" को .

नहीं जाता। आलोचना—सख्त से सख्त और अधिक से अधिक निर्मम आलोचना—पार्लामेंटवाद की या पार्लामेंटी काम की नहीं होनी चाहिए, बल्कि उन नेताओं की करनी चाहिए जो पार्लामेंट के चुनावों का और पार्लामेंट के मंच का क्रान्तिकारी, कम्युनिस्ट ढंग से उपयोग करने में असमर्थ हैं; और जो लोग यह करने को राजी ही नहीं हैं, उनकी तो और भी ज्यादा आलोचना होनी चाहिए। ऐसी आलोचना से—और उसके साथ-साथ अयोग्य नेताओं को निकाल कर उनकी जगह योग्य नेताओं को रखने से—ही लाभ होगा और क्रान्ति का हित होगा। और उसीसे "नेता" मजदूर वर्ग तथा मेहनतकश जनता के विश्वास के योग्य बनना सीखेंगे, और जनता राजनीतिक परिस्थिति को और उससे पैदा होनेवाली अक्सर बहुत पेचीदा और उलझी हुई समस्याओं को ठीक ढंग से समझना सीखेगी।*

---

* इटली के "उग्रवादी" कम्युनिज्म के बारे में जानकारी प्राप्त करने का मुझे बहुत कम अवसर मिला है। कामरेड बोर्दिगा और उनका "कम्युनिस्ट-बहिष्कारवादियों" का गुट पार्लामेंट में भाग न लेने का समर्थन करके निश्चय ही एक गलत काम कर रहा है। परन्तु मुझे लगता है कि एक बात पर कामरेड बोर्दिगा का मत सही है। कम से कम, उनके पत्र इल सोवियत के दो अंकों से (१८ जनवरी और १ फ़रवरी, १९२० के अंक ३ और ४ से), कॉमरेड सेरांती के सुन्दर पत्र कम्युनिज्मो के (१ अक्तूबर से ३० नवम्बर १९१९ तक के १-४ अंक) चार अंकों से, और इटली के पूंजीवादी पत्रों के उन इक्के-दुक्के अंकों से, जो मुझे मिल सके हैं, तो मुझे ऐसा ही लगता है। कामरेड बोर्दिगा और उनका गुट तुराती और उसके अनुयायियों पर इस बात के लिए हमला करते हैं कि वे लोग एक ऐसी पार्टी के सदस्य तो बने हुए हैं जो सोवियत सत्ता तथा मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व को स्वीकार कर चुकी है, पर पार्लामेंट के मेम्बरों की हैसियत से अब भी अपनी पुरानी घातक और अवसरवादी नीति चला रहे हैं। यह बात सही है। और इस बात को चुपचाप सहन करके कामरेड सेरांती और इटली की पूरी समाजवादी पार्टी एक ऐसी गलती कर रही है जिससे बहुत नुक़सान होने

[८]

"समझौते नहीं चाहिए" ?

फ्रैंकफुर्ट की पुस्तिका के उद्धरण में हम देख चुके हैं कि "उग्रवादी" कितने जोर-शोर के साथ यह नारा बुलन्द करते हैं। अपने को निस्सन्देह मार्क्सवादी समझनेवाले और मार्क्सवादी बनने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति जब मार्क्सवाद की बुनियादी सचाई को भूल जाते हैं, तो यह देखकर सचमुच बड़ा सदमा होता है। एंगेल्स ने—जो मार्क्स के समान उन चन्द इने-गिने लेखकों में से थे जिनकी महान रचनाओं का एक-एक वाक्य विलक्षण और गूढ़ अर्थ रखता है—"तैंतीस ब्लांक्वीवादी कम्यूनार्डों"[*] के घोषणापत्र के जवाब में १८७४ में लिखा था :

की आशंका है, और उसी तरह के खतरों के पैदा होने का डर है जिस तरह के खतरे ऐसी ही एक ग़लती से हंगरी में पैदा हो गये थे। हंगरी में, वहां के तुरातियों ने पार्टी और सोवियत सरकार दोनों को अन्दर से तोड़फोड़ डाला था। अवसरवादी पार्लामेंटवादियों के प्रति ऐसी ग़लत, असंगत और ढुटना-टेकू नीति से एक ओर तो "उग्रवादी" कम्युनिज्म पैदा होता है, दूसरी ओर उससे "उग्रवादी" कम्युनिज्म को कुछ औचित्य प्राप्त हो जाता है। जब कामरेड सेरॉती तुराती पर "असंगत" व्यवहार का आरोप लगाते हैं (कम्युनिज्मो के १२ अंक में), तो वह स्पष्ट ही ग़लती करते हैं, क्योंकि "असंगत व्यवहार" वास्तव में इटली की समाजवादी पार्टी कर रही है, क्योंकि वह तुराती और उसके साथियों जैसे अवसरवादी पार्लामेंटवादियों को अभी तक अपने में शामिल किये हुए है।

"'हम कम्युनिस्ट हैं' (ब्लांक्वीवादी कम्यूनार्डों ने अपने घोषणापत्र में लिखा है) 'क्योंकि हम बीच की मंजिलों पर नहीं ठहरना चाहते, हम किसी प्रकार के समझौते नहीं करना चाहते, क्योंकि उससे केवल विजय का दिन टलता है, और हम सीधे अपने लक्ष्य पर पहुँच जाना चाहते हैं।'

"जर्मन कम्युनिस्ट कम्युनिस्ट हैं क्योंकि बीच की सारी मंजिलों और सारे समझौतों के दौरान में, जिन्हें उन्होंने नहीं बल्कि इतिहास के विकास-क्रम ने उत्पन्न किया है, वे अपने अन्तिम लक्ष्य *को कभी आंखों से ओझल नहीं होने देते और सदा उसकी पूर्ति के* लिए प्रयत्न करते रहते हैं। उनका यह अन्तिम लक्ष्य वर्गों का अन्त करना और एक ऐसा समाज बनाना है जिसमें भूमि पर या उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होगा। तैंतीस ब्लांक्वीवादी इसलिए कम्युनिस्ट हैं क्योंकि उनके विचार में, महज इस कारण कि वे स्वयं बीच की मंजिलों और समझौतों से कन्नी काटना चाहते हैं, मामला तै हो जाता है, और अगर क्रान्ति दो-चार रोज़ में 'शुरू हो गयी'—जैसा कि उनके खयाल में होकर रहेगा—और सरकार उनके हाथों में आ गयी, तो उसके अगले रोज़ ही 'कम्युनिज्म जारी कर दिया जायगा'। और अगर यह फ़ौरन सम्भव नहीं है तो वे कम्युनिस्ट नहीं हैं।

"बेसब्री को सैद्धान्तिक तर्क के रूप में पेश किया जा रहा है! यह भी कैसा बचपन है!" (जर्मन सामाजिक-जनवादी पत्र *वोल्कस्टाट* के सन १८७४ के ७३ वें अंक में प्रकाशित एंगेल्स का "ब्लांक्वीवादी कम्यूनार्डों का कार्यक्रम" शीर्षक लेख, जो रूसी भाषा में १८७१-१८७५ के लेख के रूप में पेत्रोग्राद से १९१९ में प्रकाशित हुआ है; पृष्ठ ५२-५३)

इसी लेख में एंगेल्स ने वाइयां के प्रति बड़े आदर की भावना प्रकट की है और उसके "माने हुए गुणों" का ज़िक्र किया है (वाइयां, गुएज्दे की तरह ही अगस्त १९१४ तक अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन के सबसे प्रमुख नेताओं में गिना जाता था; अगस्त १९१४ में दोनों

ने समाजवाद के साथ गद्दारी की)। परन्तु एंगेल्स एक साफ़ तौर पर दिखाई देनेवाली ग़लती को विस्तार के साथ उसका विश्लेषण किये बिना नहीं छोड़ देते। ज़ाहिर है कि बहुत कम उम्र और अनुभवहीन क्रान्तिकारियों की दृष्टि में और साथ ही काफ़ी उम्र के और बड़े अनुभव वाले निम्न-पूंजीवादी क्रान्तिकारियों की दृष्टि में भी, "समझौते करने की इजाज़त देना" बहुत ही "खतरनाक", गलत और समझ में न आने वाली बात मालूम पड़ती है। और बहुत से पाखंडी (जो प्रायः बहुत अधिक या जरूरत से ज्यादा "अनुभवी" राजनीतिज्ञ होते हैं) ठीक उसी ढंग से तर्क करते हैं जैसे अवसरवाद के वे ब्रिटिश नेता करते हैं, जिनका कामरेड लांसबरी ने उल्लेख किया है। वे भी कहते हैं : "अगर बोल्शेविक एक ढंग का समझौता कर सकते हैं, तो हम हर ढंग का समझौता क्यों नहीं कर सकते?" परन्तु मज़दूर, जिन्होंने अनेक हड़तालों में शिक्षा प्राप्त की है (यहां वर्ग संघर्ष के केवल इसी स्वरूप को हम ले रहे हैं), प्रायः एंगेल्स द्वारा प्रतिपादित इस गूढ़ (दार्शनिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक) सत्य को अच्छी तरह समझते हैं। हर मज़दूर ने हड़तालों को देखा है और घृणित उत्पीड़कों और शोषकों के साथ हुए ऐसे "समझौतों" को देखा है जिनसे मज़दूरों की मांग पूरी नहीं हुई है, या आंशिक रूप में ही पूरी हुई है, और उन्हें अपने काम पर वापस चला जाना पड़ा है। हर मज़दूर—जन-संघर्ष की परिस्थितियों के कारण और उन वर्ग-विरोधों के तीव्र होने के कारण जिनके बीच वह रहता है—समझौते और समझौते के भेद को जानता है। एक समझौता होता है जो वस्तुगत परिस्थितियों के कारण करना पड़ता है (जैसे, हड़ताल-फंड का न होना, बाहरी समर्थन का अभाव, भूख की मार और थकन)। इस तरह का समझौता, समझौता करनेवाले मज़दूरों के क्रान्तिकारी जोश और फिर से लड़ने के इरादे को किसी तरह कम नहीं करता। दूसरी तरह का समझौता गद्दारों द्वारा सम्पन्न होता है, समझौता करनेवाले अपने स्वार्थ को (हड़ताल-तोड़क भी करते हैं), अपनी कायरता को, पूंजीपतियों को खुश करने की

और पूंजीपतियों की गीदड़-भभकियों के सामने, उनके समझाने-बुझाने, उनकी रिश्वतों और कभी-कभी उनकी खुशामद के सामने सिर झुका देने की अपनी इच्छा को बाहरी कारणों से छिपाने की कोशिश करते हैं; (ब्रिटिश मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में ऐसे ग़द्दारी के समझौतों के विशेष रूप से बहुत उदाहरण मिलते हैं, जिन्हें ब्रिटिश ट्रेड यूनियन के नेताओं ने किये थे; पर किसी न किसी रूप में *लगभग सभी* देशों के तमाम मज़दूरों ने इस ढंग की चीज़ देखी है।)

स्वभावतः ऐसे असमान्य ढंग के पेचीदा उदाहरण भी मिलते हैं जब कि किसी समझौते का असली स्वरूप तै करना बहुत कठिन हो जाता है। जैसे क़त्ल के कुछ मामले होते हैं, जिनमें यह तै करना कठिन होता है कि क़त्ल करना पूरी तरह उचित और यहां तक कि आवश्यक था (जैसा कि मिसाल के लिए, आत्म-रक्षा के लिए किया गया क़त्ल होता है), या वह अक्षम्य लापरवाही का नतीजा था, या पहले से बनायी *गयी और चालाकी के साथ अमल में लायी गयी किसी विश्वासघाती* योजना का परिणाम था। ज़ाहिर है कि राजनीति में, जहां वर्गों और पार्टियों के बहुत ही पेचीदा—राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय—सम्बंधों का प्रश्न होता है, ऐसे बहुत से उदाहरण सामने आयेंगे जिनके बारे में राय क़ायम करना, किसी हड़ताल में किये गये उचित "समझौते" या किसी हड़ताल-तोड़क और ग़द्दार नेता द्वारा सम्पन्न विश्वासघाती "समझौते" के बारे में राय क़ायम करने से कहीं अधिक कठिन होगा। सभी उदाहरणों के लिए एक नुस्खा तैयार कर देना या एक आम नियम ("समझौते नहीं चाहिए!") बना देना बिलकुल ग़लत होगा। आदमी को अपने दिमाग़ का इस्तेमाल करना चाहिए और हर मामले में अलग-अलग अपना रुख तै करना चाहिए। असल में यह पार्टी-संगठनों और *पार्टी-नेताओं का एक काम है, बशर्ते कि ये नेता कहलाने के योग्य* हों। यानी यह कि वर्ग-विशेष के सभी विचारशील प्रतिनिधियों को एक लम्बे काल तक, विविध प्रकार के, अनवरत, और भरपूर प्रयत्नों के परिणामस्वरूप वह ज्ञान और अनुभव विकसित करना चाहिए और—ज्ञान तथा अनुभव के अलावा—वह राजनीतिक सहज अनुभूति पैदा

करनी चाहिए जो पेचीदा राजनीतिक समस्याओं को जल्दी से और सही ढंग से हल करने के लिए आवश्यक होती है।*

कुछ भोले-भाले और एकदम अनुभवहीन लोग समझते हैं कि यदि आम तौर पर यह मान लिया जाय कि समझौतों पर रोक नहीं है, तो अवसरवाद, जिसके खिलाफ़ हम दृढ़ता से संघर्ष करते हैं और जिसके खिलाफ़ हमें संघर्ष करना चाहिए, और क्रान्तिकारी मार्क्सवाद, या कम्युनिज़्म का भेद खतम हो जाता है। परन्तु यदि ऐसे लोग अभी इतना भी नहीं समझते कि प्रकृति और समाज में सभी भेद मिटते-बनते रहते हैं और बहुत कुछ रीति-रिवाजों पर निर्भर रहते हैं—तो कहना पड़ेगा कि इन लोगों के लिए इसके सिवा और कोई चारा नहीं है कि अभी बहुत दिनों तक उनकी शिक्षा हो, उनकी बुद्धि का विकास हो और वे राजनीतिक एवं रोज़मर्रा का अनुभव प्राप्त करें। हर अलग या विशेष ऐतिहासिक अवसर की राजनीति के व्यावहारिक प्रश्नों में से हमें उन प्रश्नों को अलग करना पड़ेगा जिनको लेकर मुख्य ढंग के अनुचित, विश्वासघाती समझौते होते हैं, जिनमें क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग के लिए प्राणलेवा अवसरवाद निहित होता है; और तब उनका स्पष्टीकरण करना होगा और उनका मुक़ाबला करना होगा। १९१४–१८ के साम्राज्य-वादी युद्ध के समय, जो दो समान रूप से लुटेरे देशों के दलों के बीच हो रहा था, अवसरवाद का मुख्य, बुनियादी रूप सामाजिक-देशाहंकार, अर्थात "मातृभूमि की रक्षा" के नारे का समर्थन करना

---

* अधिक से अधिक विकसित देशों में भी, सबसे आगे बढ़े हुए वर्ग में भी, और ऐसे समय पर भी जब कि तत्कालीन परिस्थितियों ने सभी नैतिक शक्तियों को असामान्य रूप से जाग्रत कर दिया हो, वर्ग के कुछ प्रतिनिधि सदा ऐसे रहेंगे जो विचारशील नहीं होते और जो विचारशील होने में असमर्थ हैं। जब तक वर्ग मौजूद हैं, जब तक वर्ग-विहीन समाज पूरी तरह जम नहीं जाता और मज़बूत नहीं हो जाता, और खुद अपनी नींव पर अच्छी तरह खड़ा हो जाता, तब तक ऐसा होना लाज़िमी है। यदि ऐसा न हो तो पूं जनता पर अत्याचार ढानेवाली वह शक्ति न रह जाय, जो वह वास्तव में

था। और ऐसे युद्ध में इस नारे का असली मतलब "अपने" पूंजीपति वर्ग के लुटेरे स्वार्थों की रक्षा करना हो जाता था। युद्ध के बाद ऐसे अनुचित तथा विश्वासघाती समझौते—जिनका मूल सार क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग तथा उसके उद्देश्य के लिए घातक होता था—जिन मुख्य अवसरवादी रूपों में प्रकट हुए, वे ये : लुटेरी "लीग ऑफ़ नेशन्स" (राष्ट्र-संघ) की हिमायत, क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग तथा "सोवियत" आन्दोलन के खिलाफ़ अपने देश के पूंजीपति वर्ग के साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से गठबंधन करने की हिमायत, "सोवियत सत्ता" के खिलाफ़ पूंजीवादी जनतंत्र और पूंजीवादी पार्लामेंटवाद की हिमायत।

> "...दूसरी पार्टियों के साथ समझौते करना... दांव-पेंच और समझौतों की नीतियों पर चलना—ये सब बातें हमें एकदम छोड़ देनी चाहिए।"

फ्रैंकफुर्ट वाली पुस्तिका में जर्मन उग्रवादियों ने कहा है।

आश्चर्य है कि यह राय रखते हुए भी ये उग्रवादी बोल्शेविज़्म की सख्त निन्दा नहीं करते! क्योंकि जर्मन उग्रवादियों को जानना चाहिए कि अक्तूबर क्रान्ति के पहले का और बाद का, बोल्शेविज़्म का का पूरा इतिहास दाव-पेंच, पैंतरेबाज़ी, और पूंजीवादी पार्टियों समेत दूसरी पार्टियों के साथ समझौतों के उदाहरणों से भरा पड़ा है।

अन्तरराष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग को उलटने के लिए युद्ध चलाना, एक ऐसा युद्ध चलाना जो राज्यों के बीच होनेवाले कठिन से कठिन साधारण युद्धों से सौ-गुना अधिक कठिन, लम्बा खिंचनेवाला और पेचीदा युद्ध होता है, और फिर भी पहले से ही दांव-पेंच का प्रयोग करने से इनकार कर देना, अपने दुश्मनों के आपसी स्वार्थों की टक्कर को (भले ही वह अस्थायी टक्कर हो) इस्तेमाल न करना, जो साथ में आ सकते हों उन दोस्तों से (भले ही उनकी दोस्ती अस्थायी, अस्थिर, ढुलमुल और शर्तों के साथ हो) समझौते न करना—यह हद दर्जे की हास्यास्पद बात नहीं तो और क्या है? क्या इससे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि मानो हमें चढ़ाई तो एक ऐसे पर्वत की करनी है जिस पर आज तक कोई नहीं चढ़ पाया है और जो अभी तक मनुष्य की पहुँच के बाहर रहा

है, पर हमने पहले से ही ऐलान कर दिया है कि हम सिर्फ नाक की सीध में चलेंगे, कभी दायें-बायें नहीं मुड़ेंगे, कभी पीछे नहीं हटेंगे, और एक रास्ते को पकड़ने के बाद उसे कभी छोड़ेंगे नहीं और दूसरे रास्तों को कभी आज़मायेंगे नहीं ! और फिर भी हम पाते हैं कि ऐसे अधकचरे और अनुभवहीन लोगों का (यदि वे सिर्फ कम-उम्र और नौजवान लोग होते तो इतनी खराब बात न होती, क्योंकि नौ-उम्र लोगों को तो स्वयं भगवान ने कुछ समय तक इस तरह की बकवास करने का अधिकार दे रखा है), हॉलैंड की कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ सदस्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, खुलकर या लुके-छिपे, पूरी तरह या आंशिक रूप से समर्थन करते हैं !!

मज़दूर वर्ग की पहली समाजवादी क्रान्ति होने और एक देश में पूंजीपति वर्ग के उलटे जाने के बाद, बहुत दिनों तक उस देश का मज़दूर वर्ग पूंजीपति वर्ग से कमज़ोर रहता है। इसका कारण केवल यह है कि पूंजीपति वर्ग के बड़े व्यापक अन्तरराष्ट्रीय सम्बंध होते हैं। और साथ ही इसका कारण यह भी है कि जिस देश में पूंजीपति वर्ग को उलट दिया गया है, उस देश के छोटे पैमाने के माल उत्पादक स्वयं-स्फूर्त ढंग से और लगातार पूंजीपति वर्ग में फिर से जान डालते जाते और उन्हें फिर से पैदा करते रहते हैं। अपने से अधिक शक्तिशाली दुश्मन को हराने के लिए सारी ताक़त लगाकर कोशिश करनी पड़ती है। और उसके लिए ज़रूरी होता है कि अपने दुश्मनों के प्रत्येक मतभेद का, छोटे से छोटे "मतभेद" का, विभिन्न देशों के पूंजीपतियों के बीच स्वार्थों की प्रत्येक टक्कर का, अलग-अलग देशों के विभिन्न प्रकार के पूंजीपतियों के हितों के प्रत्येक अन्तर्विरोध का, हम बिना चूके, पूरी तौर पर, बड़ी होशियारी, सावधानी और दक्षता से इस्तेमाल करें। उसके लिए यह भी ज़रूरी होता है कि हम जनता पर असर रखनेवाले किसी सहयोगी को पाने के प्रत्येक अवसर से, छोटे से छोटे अवसर से भी लाभ उठायें, भले ही वह सहयोगी अस्थायी, ढुलमुल, अस्थिर, अविश्वसनीय और शर्तों के साथ सहयोग करनेवाला क्यों न हो। जो यह बात नहीं समझ पाते, वे मार्क्सवाद को, या आम तौर पर वैज्ञानिक, आधुनिक

समाजवाद को रत्ती भर भी नहीं समझते। जिन्होंने काफ़ी लम्बे समय तक और काफ़ी तरह-तरह की राजनीतिक परिस्थितियों में इस सत्य को व्यवहार में लागू करने की अपनी क्षमता को अपने कामों से साबित कर नहीं दिखाया है, वे अभी इस योग्य नहीं हुए हैं कि शोषकों से सारी मेहनतकश जनता को मुक्त करने के संघर्ष में क्रान्तिकारी वर्ग की कुछ भी सहायता कर सकें। और यह बात मज़दूर वर्ग के राजसत्ता पर कब्ज़ा करने के पहले के काल के लिए और बाद के काल के लिए समान रूप से सत्य है।

मार्क्स और एंगेल्स का कहना था कि हमारा दर्शन कठमुल्लों का धर्मशास्त्र नहीं, वरन काम करने के लिए मार्ग-दर्शक है। और कार्ल काट्स्की, ओटो बेयर, आदि जैसे "टकसाली" मार्क्सवादियों की यह सबसे बड़ी ग़लती और सबसे बड़ा गुनाह है कि उन्होंने इस बात को नहीं समझा और मज़दूर क्रान्ति के संकटपूर्ण मौक़ों पर वे उस पर अमल करने में असमर्थ रहे। "राजनीतिक काम नेव्स्की की सड़क का फ़र्श नहीं है" (नेव्स्की प्रौस्पेक्ट सेंट-पीटर्सबर्ग की मुख्य, एकदम सीधी सड़क है जिसका फ़र्श बड़ा चिकना, साफ़ और चौड़ा है)—रूस में मार्क्सवाद के आने के पहले के युग के महान रूसी समाजवादी एन० जी० चेर्नीशेव्स्की यह बात कहा करते थे। और चेर्नीशेव्स्की के समय से आज तक, इस सत्य को अनदेखा करने या भुला देने की क़ीमत रूसी क्रान्तिकारियों ने अनगिनत क़ुरबानियां देकर चुकायी है। हमें भरपूर कोशिश करनी चाहिए कि उग्रवादी कम्युनिस्टों को और पश्चिमी योरप तथा अमरीका के क्रान्तिकारियों को, जो मज़दूर वर्ग के प्रति वफ़ादार हैं, इस सत्य को हृदयंगम करने के लिए पिछड़े हुए रूसियों जैसी बड़ी क़ीमत चुकानी न पड़े।

ज़ारशाही के पतन के पहले रूस के क्रान्तिकारी सामाजिक जनवादियों ने बार-बार पूंजीवादी उदारपंथियों की सेवाओं का इस्तेमाल किया था; यानी उनके साथ उन्होंने अनेक व्यावहारिक समझौते किये थे। और १६०१-०२ में, बोल्शेविज्म के प्रकट होने के पहले भी, *इस्क्रा* के पुराने सम्पादक-मंडल ने (जिसके प्लेखानोव, एक्सेलरोद,

ज़ासुलिच, मार्तोव, पोत्रेस्सोव, और स्वयं मैं सदस्य थे) पूंजीवादी उदारतावाद के राजनीतिक नेता स्त्रुवे के [illegible] बाक़ायदा एक राजनीतिक समझौता किया था (यह सच है कि [illegible] बहुत दिन नहीं चला)। और इसके साथ-साथ हम पूंजीवादी उदारतावाद के खिलाफ़ सैद्धान्तिक तथा राजनीतिक संघर्ष भी बराबर, बिना रुके, और बहुत निर्ममता के साथ चलाते रहे थे, और मज़दूर आन्दोलन में यदि पूंजीवादी उदारतावाद का ज़रा सा भी असर दिखाई पड़ता था तो हम उसका डटकर मुक़ाबला करते थे। बोल्शेविकों ने सदा इसी नीति का पालन किया है। १६०५ से वे बराबर इस बात का समर्थन करते आये हैं कि उदारपंथी पूंजीपति वर्ग तथा ज़ारशाही के खिलाफ़ मज़दूरों और किसानों को मोर्चा बनाना चाहिए। पर ऐसा करते हुए उन्होंने (उदाहरण के लिए दूसरी बार के चुनाव या चुनाव में दूसरी बार वोट लिये जाने के समय) ज़ारशाही के खिलाफ़ पूंजीपति वर्ग का समर्थन करने से कभी इनकार नहीं किया, और न ही उन्होंने पूंजीवादी क्रान्तिकारी किसान पार्टी के खिलाफ़, यानी "समाजवादी-क्रान्तिकारियों" के खिलाफ़, निर्मम सैद्धान्तिक एवं राजनीतिक संघर्ष चलाने का काम कभी बन्द किया। बोल्शेविक सदा यह बताते रहे कि ये लोग वास्तव में निम्न-पूंजीवादी जनवादी हैं और झूठमूठ में अपने को समाजवादी कहते हैं। १६०७ के दूमा के चुनाव में, थोड़े समय के लिए बोल्शेविकों ने "समाजवादी-क्रान्तिकारियों" के साथ बाक़ायदा राजनीतिक संयुक्त मोर्चा बनाया था। १६०३ और १६१२ के बीच, कई-कई वर्ष के ऐसे अनेक काल आये जब कि मेन्शेविक और हम लोग रस्मी तौर पर एक सामाजिक-जनवादी पार्टी के मेम्बर थे; परन्तु हमने उनको सदा मज़दूर वर्ग में पूंजीवादी असर फैलानेवाले अवसरवादी समझा और उनके खिलाफ़ अपना सैद्धान्तिक और राजनीतिक संघर्ष कभी भी बन्द नहीं किया। युद्ध-काल में हमने "काट्स्कीवादियों" से, उग्रवादी मेन्शेविकों (मार्तोव) से, और "समाजवादी-क्रान्तिकारियों" के एक हिस्से ([illegible] और नातान्सोन) से कुछ समझौते किये थे। जिम्मेरवाल्द और कि[illegible] के सम्मेलनों में हम उनके साथ थे और हमने उनसे मिल कर

घोषणापत्र प्रकाशित किये थे; परन्तु हमने कभी भी "काट्स्कीवादियों" के खिलाफ़, मार्तोव और चेर्नोव के खिलाफ़ (नातान्सोन १६१६ में अपनी मृत्यु के समय एक "क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट" नरोदनिक था और हम लोगों के बहुत नज़दीक और लगभग हमसे सहमत था) अपना सैद्धान्तिक तथा राजनीतिक संघर्ष बन्द या ढीला नहीं किया। अक्तूबर क्रान्ति के ऐन मौक़े पर हम लोगों ने निम्न-पूंजीवादी किसानों के साथ एक ग़ैर-रस्मी, पर बहुत महत्वपूर्ण (और बहुत सफल) राजनीतिक मोर्चा बनाया। इसके लिए हमने समाजवादी-क्रान्तिकारी पार्टी का कृषि सम्बंधी कार्यक्रम लिया और उसे पूरा का पूरा, बिना एक भी परिवर्तन के मान लिया। यानी हमने किसानों को यह समझाने के लिए कि हम उनके साथ "ज़ोर-ज़बर्दस्ती" नहीं, बल्कि उनसे समझौता करना चाहते हैं, एक ऐसा समझौता किया जिस पर कोई एतराज नहीं हो सकता था। इसके साथ ही, हमने "उग्र समाजवादी-क्रान्तिकारियों" के सामने बाक़ायदा एक राजनीतिक मोर्चा बनाने और उन्हें सरकार में भी लेने का प्रस्ताव रखा (जिस पर शीघ्र ही अमल भी होने लगा)। उन्होंने ब्रस्त-लितोव्स्क की संधि के बाद इस मोर्चे को भंग कर दिया, और फिर जुलाई १६१८ में, वे इस हद पर पहुँचे कि उन्होंने सशस्त्र विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया और हमारे खिलाफ़ संघर्ष चलाने लगे।

अतएव, हरेक को यह समझना चाहिए कि जब जर्मन उग्रवादी, जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमिटी पर "स्वतंत्र" दलवालों के साथ ("जर्मनी की स्वतंत्र सामाजिक-जनवादी पार्टी" के साथ, काट्स्कीवादियों के साथ) मोर्चा बनाने की बात सोचने के लिए हमले करते हैं, तब हमें क्यों उनका यह रुख बिलकुल हास्यास्पद लगता है और इस बात का साफ़ सबूत मालूम पड़ता है कि "उग्रवादी" गलती पर हैं। रूस में भी जर्मनी के श्वाइडेमानों से मिलते-जुलते दक्षिणपंथी मेन्शेविक थे (जो केरेंस्की सरकार में शामिल थे) और जर्मन काट्स्की-वादियों से मिलते-जुलते उग्रवादी मेन्शेविक (मार्तोव) थे, जो दक्षिणपंथी मेन्शेविकों का विरोध करते थे। १६१७ में साफ़ तौर पर दिखाई देता था कि मज़दूर जनता धीरे-धीरे मेन्शेविकों से खिंचकर बोल्शेविकों की

तरफ आ रही है। सोवियतों की पहली अखिल रूसी कांग्रेस में, जो कि जून १६१७ में हुई थी, हमारे पास केवल १३ प्रतिशत वोट थे, और बहुमत समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों का था। सोवियतों की दूसरी कांग्रेस में (जो २५ अक्तूबर १६१७ को शुरू हुई) हमारे पास ५१ प्रतिशत वोट थे। क्या कारण है कि यद्यपि जर्मनी में भी मज़दूर एकदम इसी तरह दक्षिणपंथी पक्ष से उग्रवादी पक्ष की ओर खिंचे, पर उससे तत्काल कम्युनिस्टों की ताक़त नहीं बढ़ी, बल्कि पहले बीच की "स्वतंत्र" पार्टी को बल मिला, हालांकि इस पार्टी का कभी कोई स्वतंत्र राजनीतिक विचार या स्वतंत्र नीति नहीं रही थी; और वह केवल श्वाइडेमानों और कम्युनिस्टों के बीच ढुलमुल लुढ़का करती थी?

ज़ाहिर है कि एक कारण जर्मन कम्युनिस्टों की ग़लत कार्यनीति थी; और उन्हें निडर होकर और ईमानदारी के साथ इस ग़लती को स्वीकार करना चाहिए और उसे दूर करने का ढंग सीखना चाहिए। उनकी ग़लती यह थी कि प्रतिक्रियावादी पूंजीवादी पार्लामेंटों में, और प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों में भाग लेने की ज़रूरत से वे इनकार करते थे। उनकी ग़लती यह थी कि उनमें "उग्रवादी" बचकाना मर्ज़ के बहुत से लक्षण प्रकट हो रहे थे। अब यह मर्ज़ सतह के ऊपर आ गया है, और इसलिए अब ज़्यादा अच्छी तरह और ज़्यादा जल्दी इसका इलाज होगा और उस इलाज से मरीज़ को ज़्यादा फ़ायदा पहुँचेगा।

ज़ाहिर है कि जर्मन "स्वतंत्र सामाजिक-जनवादी पार्टी" में सभी लोग एक विचार के नहीं हैं। पुराने सुधारवादी नेताओं (काउत्स्की, हिल्फ़रडिंग, और कुछ हद तक लगता है कि क्रिस्पियन, लेदेबूर, आदि भी) के साथ-साथ—जिन्होंने साबित कर दिया है कि वे सोवियत सत्ता और मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व को समझने में असमर्थ और मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष का नेतृत्व करने के अयोग्य हैं—इस पार्टी में एक उग्रवादी, मज़दूर पक्ष भी बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा है। इस पार्टी के लाखों सदस्य (उसके सदस्यों की कुल संख्या, लगता है, साढ़े सात लाख है) मज़दूर हैं जो श्वाइडेमान को छोड़ कर तेज़ी से कम्युनिज़्म की तरफ आ रहे हैं। यह मज़दूर पक्ष स्वतंत्र दल की लीपज़िग कांग्रेस

(१६१६) में यह प्रस्ताव भी पेश कर चुका है कि दल को फ़ौरन और बिना शर्त तीसरी इन्टरनेशनल में शामिल हो जाना चाहिए। दल के इस पक्ष के साथ "समझौता" करने से डरना बिलकुल हास्यास्पद बात है। इसके विपरीत, कम्युनिस्टों का यह आवश्यक कर्तव्य है कि उसके साथ समझौते की कोई न कोई शक्ल खोज निकालें। वह ऐसा समझौता होना चाहिए जिससे एक ओर तो इस पक्ष के साथ पूरी तरह मिल जाने का जरूरी काम आसानी के साथ और जल्दी पूरा हो जाय, और दूसरी ओर इससे "स्वतंत्र" दल के अवसरवादी दक्षिण-पक्ष के खिलाफ़ सैद्धान्तिक तथा राजनीतिक संघर्ष चलाने में कम्युनिस्टों के रास्ते में कोई अड़चन न पड़े। इस प्रकार के समझौते का कोई उपयुक्त ढंग खोज निकालना शायद आसान न होगा—पर यह दावा तो कोई पाखंडी ही कर सकता है कि जर्मन मजदूर और जर्मन कम्युनिस्ट "आसानी" से विजय तक पहुँच जायेंगे।

पूंजीवाद पूंजीवाद न रहे यदि "शुद्ध" मज़दूर वर्ग, चारों ओर से मज़दूरों तथा (आंशिक रूप से अपनी श्रम शक्ति बेच कर जीविका कमानेवाले) अर्ध-मज़दूरों के बीच के लोगों से, अर्ध-मज़दूरों और छोटे किसानों (तथा छोटे दस्तकारों, कारीगरों, व आम छोटे मालिकों) के बीच के लोगों से, छोटे किसानों व मंझोले किसानों के बीच के लोगों से और अन्य विविध प्रकार के चित्र-विचित्र तरह के लोगों से न घिरा रहे; और यदि खुद मज़दूर वर्ग अधिक विकसित तथा कम विकसित स्तरों में न बंटा हो, यदि मज़दूर वर्ग क्षेत्र, व्यवसाय, और कभी-कभी धर्म, आदि के आधार पर भी न बंटा हो। इस सब बात से यह निष्कर्ष निकलता है कि मज़दूर वर्ग के अग्रदल के लिए, उसके श्रेणी-सजग भाग के लिए, कम्युनिस्ट पार्टी के लिए यह आवश्यक और अत्यन्त आवश्यक है कि वह मज़दूरों के विभिन्न दलों के साथ और मज़दूरों तथा छोटे मालिकों की विभिन्न पार्टियों के साथ होशियारी से पेश आये और उनसे समझौते, आदि करे। असली सवाल यह सोचने का है कि इन नीतियों का इस प्रकार प्रयोग किया जाय कि उनसे मज़दूरों की वर्ग चेतना, क्रान्तिकारी भावना और लड़ने और लड़कर जीतने की उनकी सामर्थ्य का

साधारण स्तर नीचे न गिरे, बल्कि ऊपर उठे। साथ ही, यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मेन्शेविकों पर फ़तह पाने की खातिर बोल्शेविकों के लिए यह ज़रूरी था कि वे न सिर्फ़ १९१७ की अक्तूबर क्रान्ति के पहले बल्कि उसके बाद भी, दांव-पेंच, पैंतरेबाज़ी और समझौतों की नीति पर चलें; पर ये समझौते और दांव-पेंच, ज़ाहिर है, ऐसे होते थे जिनसे मेन्शेविकों का पत्ता कटता था और बोल्शेविकों को मदद मिलती थी, उनकी ताक़त बढ़ती थी और वे मज़बूत होते थे। निम्न-पूंजीवादी जनवादी (मेन्शेविक भी उनमें शामिल हैं), अवश्यम्भावी रूप से पूंजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग के बीच, पूंजीवादी जनतंत्र और सोवियत व्यवस्था के बीच, सुधारवाद और क्रान्तिवाद के बीच, मज़दूरों से प्रेम और मज़दूर अधिनायकत्व से भय के बीच ढुलमुल बने रहते हैं। कम्युनिस्टों के लिए उचित कार्यनीति यह होगी कि इस ढुलमुलपन को अनदेखा न करें, बल्कि उसका इस्तेमाल करें; और उसका इस्तेमाल करने के लिए आवश्यक है कि जो तत्व मज़दूर वर्ग की ओर मुड़ रहे हैं, उनको—वे जब भी और जिस हद तक भी मज़दूर वर्ग की ओर मुड़ें—रियायतें दी जायें और जो लोग पूंजीपति वर्ग की ओर मुड़ रहे हैं, उनसे लड़ा जाय। इसी सही कार्यनीति का परिणाम है कि हमारे देश में मेन्शेविज़्म छिन्न-भिन्न हो गया है और अधिकाधिक छिन्न-भिन्न होता जा रहा है, कट्टर अवसरवादी नेता अकेले पड़ते जा रहे हैं, और निम्न-पूंजीवादियों के सर्वोत्तम कार्यकर्ता और सर्वोत्तम तत्व हमारे पक्ष की ओर आ रहे हैं। यह एक लम्बी क्रिया है, और जल्दबाज़ी करने से, "समझौते नहीं चाहिए, दांव-पेंच नहीं चाहिए" वाली नीति पर चलने से, क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग के असर को मज़बूत करने और उसकी ताक़त को बढ़ाने के काम में नुक़सान ही पहुँचेगा।

अन्त में जर्मनी के "उग्रवादियों" की निस्संदेह यह भी एक ग़लती है कि वे वारसाई की शान्ति-संधि को बिलकुल न मानने पर ज़ोर देते हैं। जितने ही अधिक "ज़ोर" और "आडम्बर" के साथ, जितनी ही "कट्टरता" और "पक्केपन" के साथ इस मत का प्रतिपादन किया जाता है (जैसा कि कार्ल हौर्नर ने किया है), उसमें उतनी ही कम

बुद्धिमानी दिखाई पड़ती है। अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर क्रान्ति की वर्तमान परिस्थितियों में इतना ही काफ़ी नहीं है कि "राष्ट्रीय बोल्शेविज्म" (लौफ़ेनबुर्ग, आदि) की—जो इस हद तक चला गया है कि मित्र राष्ट्रों के खिलाफ़ युद्ध करने के लिए जर्मन पूंजीपति वर्ग के साथ मोर्चा बनाने का समर्थन करने लगा है—बेतुकी बातों और बेहूदगियों का खंडन किया जाय। हमें यह समझना पड़ेगा कि सोवियत जर्मनी को (यदि शीघ्र ही एक जर्मन सोवियत प्रजातंत्र क़ायम हो गया तो) कुछ समय तक वारसाई शान्ति-संधि को मान कर चलना होगा; और यदि इस ज़रूरत को महसूस नहीं किया गया, तो एक बहुत बड़ी और बुनियादी ग़लती होगी। पर इसका मतलब यह नहीं कि जब सरकार श्वाइडेमान जैसे लोगों के हाथ में थी, जब हंगरी की सोवियत सरकार का अभी पतन नहीं हुआ था, और जब सोवियत हंगरी के समर्थन के लिए वियना में सोवियत क्रान्ति होने की सम्भावना खतम नहीं हुई थी—तब ऐसी परिस्थितियों में भी "स्वतंत्र" दलवालों की यह मांग उचित थी कि वारसाई की शान्ति-संधि पर हस्ताक्षर किये जायें। उस समय "स्वतंत्र" दलवालों ने बड़े भोंदे ढंग के दांव-पेंच चलाये, क्योंकि उन्होंने एक तरह से श्वाइडेमान जैसे ग़द्दारों की जिम्मेदारी अपने सिर पर ओढ़ ली, और श्वाइडेमान जैसे लोगों के खिलाफ़ निर्मम वर्ग-युद्ध चलाने की नीति को छोड़ कर वे एक "वर्ग-विहीन" अथवा "वर्गोपरि" दृष्टिकोण अपनाने के धरातल पर उतर आये।

परन्तु अब स्पष्टतः स्थिति ऐसी है कि जर्मन कम्युनिस्टों को अपने हाथ नहीं बंधवा लेने चाहिए और पहले से ही यह साफ़ और दो-टूक वादा नहीं कर लेना चाहिए कि कम्युनिज्म की विजय हो जाने पर वे वारसाई शान्ति-संधि को मानने से इनकार कर देंगे। ऐसा करना मूर्खता होगी। उन्हें यह कहना चाहिए: श्वाइडेमानों और काउत्स्कीवादियों ने ऐसे अनेक विश्वासघातपूर्ण काम किये हैं जिनकी वजह से सोवियत रूस और सोवियत हंगरी के साथ मित्रता होने के रास्ते में अड़चनें पड़ी हैं (कई बार तो उनके कामों के कारण मित्रता के अनेक अवसर बरबाद हो गये हैं)। हम कम्युनिस्ट ऐसी मित्रता कराने के लिए भूमि

तैयार करने की पूरी कोशिश करेंगे; और हमारे लिए यह ज़रूरी नहीं है कि हम किसी भी स्थिति में वारसाई की शांति-संधि को मानने से इनकार करना, और फ़ौरन ऐसा करना, अपना कर्तव्य समझेंगे। वारसाई की संधि को मानने से इनकार करने में हमें सफलता मिलती है या नहीं, यह बात सोवियत आन्दोलन की केवल जर्मनी में होनेवाली सफलताओं पर ही नहीं, बल्कि उसकी अन्तरराष्ट्रीय सफलताओं पर भी निर्भर करती है। श्चाइडेमान जैसे लोग और काउत्स्कीवादी इस आन्दोलन के रास्ते में रोड़े डाल रहे हैं; हम इस आन्दोलन की मदद कर रहे हैं। यही असली बात है, क्योंकि हमारा बुनियादी भेद यहीं प्रकट होता है। और यदि हमारे वर्ग शत्रुओं ने, शोषकों और उनके दलालों ने, श्चाइडेमान जैसे लोगों और काउत्स्कीवादियों ने, जर्मन तथा अन्तरराष्ट्रीय सोवियत आन्दोलन को मजबूत करने के, जर्मन और अन्तरराष्ट्रीय सोवियत क्रान्ति को बल पहुँचाने के बहुत से अवसरों को हाथ से जाने दिया है, तो यह उनका दोष है। जर्मनी में सोवियत क्रान्ति सफल होगी तो अन्तरराष्ट्रीय सोवियत आन्दोलन को बल मिलेगा, जो वारसाई की संधि के खिलाफ़ और आम तौर पर अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्यवाद के खिलाफ़ हमारा सबसे बड़ा सम्बल है (और एकमात्र विश्वसनीय, अजेय और संसारव्यापी सम्बल है)। वारसाई की संधि से मुक्ति पाने के प्रश्न को तत्काल, एकदम और पूरी तरह से पहला स्थान दे देना, इस प्रश्न को साम्राज्यवाद के द्वारा पीड़ित अन्य देशों को साम्राज्यवादी दासता से मुक्त करने के प्रश्न से भी अधिक महत्व देना, क्रान्तिकारी अन्तरराष्ट्रीयतावाद नहीं, कूपमंडूक राष्ट्रवाद है (जो काउत्स्की, हिल्फ़रडिंग, ओटो बेयर और उनके संगी-साथियों को ही शोभा देता है)। जर्मनी में या योरप के किसी भी बड़े देश में यदि पूंजीपति वर्ग को उलट दिया जाय, तो उससे अन्तरराष्ट्रीय क्रान्ति का इतना बड़ा लाभ होगा कि उसके लिए वारसाई की शान्ति-संधि को काफ़ी दिनों तक कायम रहने दिया जा सकता है, और यदि आवश्यक हो तो, उसे रहने देना चाहिए। स्वयं रूस यदि कई महीने तक ब्रेस्त-ल[illegible] संधि को बर्दाश्त कर सका, और उसके द्वारा क्रान्ति का हित

तो सोवियत जर्मनी के लिए यह असम्भव नहीं होगा कि वह सोवियत रूस की मित्रता की सहायता से वारसाई की संधि को और भी अधिक समय तक क्रान्ति के हित में सहन करता रहे।

फ्रांस, इंगलैंड, आदि के साम्राज्यवादी जर्मन कम्युनिस्टों को उकसा कर फंदे में फंसाना चाहते हैं। वे उनसे कहते हैं: "कहो कि तुम वारसाई की संधि पर हस्ताक्षर नहीं करोगे!" और उग्रवादी कम्युनिस्ट अपने चालाक और फ़िलहाल ज्यादा ताक़तवर दुश्मन के ख़िलाफ़ पैंतरेबाज़ी से काम नहीं लेते और उससे यह नहीं कहते—कि "इस वक्त हम वारसाई संधि पर हस्ताक्षर करेंगे"—बल्कि बचपन में आकर उसकी चाल में फंस जाते हैं। अपने हाथों को पहले से बंधवा देना, अपने से ज्यादा हथियारबन्द दुश्मन से खुलेआम कह डालना कि हम उससे लड़ेंगे और यह भी बता देना कि कब लड़ेंगे—यह क्रान्तिकारिता नहीं, मूर्खता है। ऐसे समय युद्ध में उतरना, जब उससे साफ़ तौर पर हमारा नहीं, बल्कि दुश्मन का फ़ायदा होता हो, एक गुनाह है। और क्रान्तिकारी वर्ग का जो भी राजनीतिक नेता एक साफ़ तौर पर नुक़सानदेह लड़ाई से बचने के लिए जरूरी "पैंतरेबाज़ी, दांव-पेंच और समझौते" नहीं कर सकता, वह बिलकुल बेकार का नेता है।

[६]

ब्रिटेन में "उग्रवादी" कम्युनिज्म

ब्रिटेन में कम्युनिस्ट पार्टी नहीं है, पर मज़दूरों में तेज़ी से बढ़ता हुआ एक नया, व्यापक, शक्तिशाली कम्युनिस्ट आन्दोलन अवश्य है, जिसे देख कर मन में बड़ी से बड़ी आशाएं पैदा होती हैं। वहां ऐसी कई राजनीतिक पार्टियां और संगठन हैं (ब्रिटिश समाजवादी पार्टी, समाजवादी मज़दूर पार्टी, दक्षिणी वेल्स समाजवादी संस्था, मज़दूरों का समाजवादी संघ), जो एक कम्युनिस्ट पार्टी बनाना चाहते हैं और जिन्होंने इस उद्देश्य से आपस में बातचीत भी शुरू कर दी है। अन्तिम संगठन के साप्ताहिक मुखपत्र वर्कर्स ड्रेडनौट ने अपने २१ फ़रवरी १६२० के, खंड ६, अंक ४८ में अपनी सम्पादिका कॉमरेड सिल्विया पैंकहर्स्ट का "एक कम्युनिस्ट पार्टी की ओर" शीर्षक लेख प्रकाशित किया है। इस लेख में एक संयुक्त कम्युनिस्ट पार्टी बनाने के सम्बंध में उक्त चार संगठनों में चलनेवाली बातचीत की रूपरेखा दी गयी है। यह बातचीत तीसरी इन्टरनेशनल से सम्बंध स्थापित करने और पार्लामेंटवाद की जगह सोवियत व्यवस्था और मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व स्वीकार करने के आधार पर चल रही है। मालूम होता है कि एक संयुक्त कम्युनिस्ट पार्टी की तुरन्त स्थापना के रास्ते में एक सबसे बड़ी अड़चन वह मतभेद है जो पार्लामेंट में भाग लेने के सवाल पर और इस सवाल पर उठ खड़ा हुआ है कि नयी कम्युनिस्ट पार्टी को पुरानी, ट्रेड यूनियनवादी, अवसरवादी और सामाजिक-जनवादी लेबर पार्टी में, जो अधिकतर ट्रेड यूनियनों की

लेकर बनी है, शामिल होना चाहिए या नहीं। मज़दूरों का समाजवादी संघ (वर्कर्स सोशलिस्ट फ़ेडरेशन) और समाजवादी मज़दूर पार्टी (सोशलिस्ट लेबर पार्टी)* पार्लामेंट के चुनावों के और पार्लामेंट में भाग लेने के खिलाफ़ हैं, और वे लेबर पार्टी से सम्बंध स्थापित रखने के विरुद्ध हैं। और इस सवाल को लेकर उनका ब्रिटिश समाजवादी पार्टी (ब्रिटिश सोशलिस्ट पार्टी) के सभी, या अधिकतर सदस्यों से मतभेद है। ब्रिटिश समाजवादी पार्टी को ये लोग ब्रिटेन में "कम्युनिस्ट पार्टियों का दक्षिण-पक्ष" समझते हैं। (देखिए : *सिल्विया पैंकहर्स्ट का लेख, पृष्ठ ५*)

इस प्रकार मुख्य मतभेद वही है जो जर्मनी में है, यद्यपि उसके प्रकट होने के रूप में बहुत बड़ा अन्तर है (जर्मनी में उसका रूप ब्रिटिश रूप की *तुलना में "रूसी" रूप से अधिक मिलता-जुलता है)*। कुछ दूसरी बातों में भी अन्तर दिखाई पड़ता है। अस्तु, आइये "उग्रवादियों" के तर्कों पर थोड़ा विचार करें!

पार्लामेंट में भाग लेने के सवाल पर लिखते हुए कॉमरेड सिल्विया पैंकहर्स्ट ने कॉमरेड विलियम गैलेक्र के एक लेख का ज़िक्र किया है, जो कि उसी अंक में प्रकाशित हुआ है। कॉमरेड गैलेक्र ग्लासगो की स्कॉटिश मज़दूरों की काउंसिल की ओर से लिखते हैं :

> "उपरोक्त काउंसिल निश्चित रूप से पार्लामेंटवाद की विरोधी है और उसे विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं के वामपक्ष का समर्थन प्राप्त है। हम स्कॉटलैंड के *क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रतिनिधित्व* करते हैं। हम उद्योग-धंधों में क्रान्तिकारी संगठन और देश भर में, सामाजिक समितियों पर आधारित, एक कम्युनिस्ट पार्टी बनाने के लिए *अनवरत प्रयत्न कर रहे हैं। काफ़ी समय से* हमारे और पार्लामेंटवादियों के बीच तनातनी चल रही है। हमने उनके खिलाफ़ खुलेआम लड़ाई का ऐलान करना ज़रूरी *नहीं समझा है*, और वे हम पर *हमला शुरू करने में* डरते हैं।

* *मेरा विचार है कि यह पार्टी लेबर पार्टी में शामिल होने के तो खिलाफ़ है, पर उसके सभी सदस्य पार्लामेंट में भाग लेने के खिलाफ़ नहीं हैं।*

"पर यह हालत बहुत दिनों तक नहीं चल सकती। हमारी हर तरफ़ जीत हो रही है।

"स्कॉटलैंड में आई० एल० पी० (इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी या स्वतंत्र लेबर पार्टी) के साधारण कार्यकर्ता पार्लामेंट के विचार से अधिकाधिक ऊबते जा रहे हैं, और उनकी लगभग प्रत्येक शाखा सोवियतों (हमने रूसी शब्द को ही अपनी भाषा में लिख दिया है) या मज़दूरों की काउंसिलों का समर्थन कर रही है। ज़ाहिर है कि यह उन महानुभावों के लिए बड़ी चिन्ता की बात है जिन्होंने राजनीति को अपना पेशा बना लिया है। और वे लोग हर मुमकिन तरीक़े से अपने सदस्यों को पार्लामेंटवाद के झंडे के नीचे वापस चले आने के लिए समझा रहे हैं। क्रान्तिकारी साथियों को इस गुट की कोई मदद नहीं करनी चाहिए (शब्दों पर ज़ोर लेखक का है)। यहां हमारा संघर्ष बहुत कठिन होने वाला है। सबसे खराब बात यह होगी कि जो लोग अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा को क्रान्ति से अधिक महत्व देते हैं, वे गद्दारी करेंगे। पार्लामेंटवाद का किसी तरह भी समर्थन करना सीधे-सीधे अपने देश के श्चाइडेमान और नौस्क के हाथों में ताक़त सौंप देना है। हेंडरसन, क्लाइंस और उनके लगुए-भगुए घोर प्रतिक्रियावादी हैं। आई० एल० पी० की बागडोर अधिकाधिक उन मध्य-वर्गी उदारपंथियों के हाथों में चली जा रही है, जिनको ... मैकडोनॉल्ड, स्नोडन और उनके लगुओं-भगुओं के मंदिर में 'आत्मा की शान्ति' प्राप्त हुई है। आई० एल० पी० के नेता तीसरी इन्टरनेशनल के सख्त विरोधी हैं, उसके साधारण कार्यकर्ता इन्टरनेशनल के साथ हैं। पार्लामेंटवादी अवसरवादियों का किसी भी तरह समर्थन करना सीधे तौर पर इन नेताओं के हाथों में खेलना है। बी० एस० पी० (ब्रिटिश समाजवादी पार्टी) का यहां कोई महत्व नहीं है... यहां जिस चीज़ की ज़रूरत है, वह है एक ठोस क्रान्तिकारी औद्योगिक संगठन और एक कम्युनिस्ट पार्टी की, जो स्पष्ट, सुनिश्चित, वैज्ञानिक ढंग से काम करती हो

यदि हमारे साथी इन चीजों के बनाने में हमारी मदद कर सकते हैं, तो हम खुशी से उनकी मदद लेंगे। पर यदि वे यह नहीं कर सकते, तो फिर भगवान के लिए उन्हें-यहां कतई टांग नहीं अड़ानी चाहिए, वरना कहीं ऐसा न हो कि वे उन प्रतिक्रियावादियों को मदद देकर क्रान्ति के साथ विश्वासघात करें, जो पार्लामेंटी 'उपाधियों' (?) (सवालिया निशान भी लेखक का ही है) के लिए इतनी उत्सुकता से शोर मचा रहे हैं और जो यह साबित करने के लिए बेचैन हैं कि वे भी 'मालिक' वर्ग के राजनीतिज्ञों जैसी कुशलता से शासन कर सकते हैं।"

यह पत्र, मेरी राय में, नौजवान कम्युनिस्टों के और उन साधारण मज़दूरों के, जो कि इस समय कम्युनिज्म की ओर आ रहे हैं, मनोभावों को और दृष्टिकोण को बहुत अच्छी तरह व्यक्त कर देता है। यह मनोभाव बहुत मूल्यवान और बड़ा उत्साहवर्धक है। हमें उसकी क़द्र करना और उसका समर्थन करना सीखना चाहिए, क्योंकि बिना उसके ब्रिटेन में, या किसी भी देश में, मज़दूर क्रान्ति की सफलता की आशा करना व्यर्थ है। जो लोग जनता की इस भावना को व्यक्त कर सकते हैं, जो लोग जनता में ऐसी भावना जगा सकते हैं (क्योंकि अक्सर जनता की भावना सोई हुई, दबी हुई, और छिपी हुई पड़ी रहती है), उनका मूल्य समझना चाहिए, और उनकी हर तरह मदद करनी चाहिए। और इसके साथ-साथ, हमें उन्हें साफ़ तौर पर और बिना लाग-लपेट के बताना चाहिए कि एक महान क्रान्तिकारी संघर्ष में जनता का नेतृत्व करने के लिए केवल भावना काफ़ी नहीं होती। हमें उन्हें बताना चाहिए कि क्रान्ति के बहुत वफ़ादार सिपाही, जो अमुक ग़लतियां करनेवाले हैं या कर रहे हैं, उनसे क्रान्ति के लक्ष्य को धक्का पहुँच सकता है। कॉमरेड गैलेकर के पत्र में उन तमाम ग़लतियों के बीज मौजूद हैं, जो जर्मनी में "उग्रवादी" कम्युनिस्ट कर रहे हैं, और जो रूस में, १६०८ और १६१८ के बीच "उग्रवादी" बोल्शेविक कर चुके हैं।

पत्र के लेखक का दिल पूंजीपति "वर्ग के राजनीतिज्ञों" के लिए सर्वहारा की पवित्र घृणा से ओत-प्रोत है (परन्तु इस घृणा को न केवल

मज़दूर, बल्कि सभी मेहनतकश लोग, जर्मनों के शब्दों में, सभी "छोटे लोग", अच्छी तरह समझते हैं और उन सभी के दिलों में यह घृणा मौजूद है)। दलित एवं पीड़ित जनता के एक प्रतिनिधि की यह घृणा ही वास्तव में "समस्त ज्ञान का प्रारम्भ" है, प्रत्येक समाजवादी तथा कम्युनिस्ट आन्दोलन का और उसकी सफलता का आधार है। परन्तु लेखक शायद यह नहीं समझता कि राजनीति एक विज्ञान और एक कला है जो आकाश से नहीं टपकती, जो मुफ्त में नहीं बंटती; और यदि पूंजीपति वर्ग पर मज़दूर वर्ग विजय प्राप्त करना चाहता है, तो उसे अपने, मज़दूर "वर्ग के राजनीतिज्ञों" को शिक्षा देकर तैयार करना होगा, और यह देखना होगा कि ये राजनीतिज्ञ किसी भी बात में पूंजीवादी राजनीतिज्ञों से कम न हों।

पत्र के लेखक ने यह बात बड़ी स्पष्टता से रखी है कि मज़दूर वर्ग के उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन पार्लामेंट नहीं हो सकती, मज़दूरों की सोवियतें ही उसका साधन हो सकती हैं। और यह ज़ाहिर है कि जिन लोगों ने अभी तक यह बात नहीं समझी है, वे पक्के प्रतिक्रियावादी हैं, भले ही वे बहुत शिक्षित लोग हों, बड़े अनुभवी राजनीतिज्ञ हों, बहुत सच्चे समाजवादी हों, बड़े पढ़े-लिखे मार्क्सवादी हों, या बड़े ईमानदार नागरिक और गृहस्थ हों। पर पत्र का लेखक यह नहीं पूछता, यह पूछने की बात उसके दिमाग़ में भी नहीं आती कि क्या सोवियतों के समर्थकों को पार्लामेंट के अन्दर भेजे बिना, पार्लामेंटवाद को अन्दर से छिन्न-भिन्न किये बिना, पार्लामेंट को भंग करने के भावी कामको पूरा करने के मक़सद से पार्लामेंट के अन्दर सोवियतों की सफलता के लिए काम किये बिना, पार्लामेंट के ऊपर सोवियतों की विजय सम्भव है? और इसके बावजूद पत्र का लेखक इस बिलकुल सही विचार को व्यक्त करता है कि ब्रिटेन में कम्युनिस्ट पार्टी को वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर काम करना चाहिए। विज्ञान का एक तो तक़ाजा यह है कि दूसरे देशों का अनुभव ध्यान में रखना चाहिए, विशेष कर उन देशों का—जिनमें पूंजीवादी देश भी शामिल हैं—जो हाल में अपने देश से बहुत मिलते जुलते अनुभव से गुजर चुके हैं, या गुजर रहे हैं। विज्ञान का दू-

तक़ाज़ा यह है कि देश विशेष में पायी जानेवाली सभी शक्तियों, दलों, पार्टियों, वर्गों और जनता को ध्यान में रखना चाहिए, और केवल एक दल या पार्टी की इच्छा या मत को, केवल उसी की वर्ग चेतना के स्तर या लड़ने की उसकी तैयारी को ही, आधार बना कर नीति निश्चित नहीं करनी चाहिए।

यह बात सच है कि हेंडरसन, क्लाइंस, मैक्डोनॉल्ड और स्नोडन जैसे लोग पक्के प्रतिक्रियावादी हैं। यह भी उतना ही सच है कि ये लोग अपने हाथों में ताक़त की बागडोर लेना चाहते हैं (यद्यपि पूंजीपति वर्ग के साथ साझेदारी करना उन्हें ज्यादा अच्छा लगता है); ये लोग पुराने पूंजीवादी ढंग पर "राज" करना चाहते हैं और ताक़त पाने के बाद वे ठीक उसी तरह पेश आयेंगे जैसे श्चाइडेमान और नोस्क सरीखे लोग पेश आये थे। यह सब सच है। परन्तु इसका यह हरगिज मतलब नहीं होता कि इन लोगों का समर्थन करना क्रान्ति के साथ ग़द्दारी करना है; बल्कि इसका मतलब तो यह है कि क्रान्ति के हित में मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारियों को पार्लामेंट के अन्दर इन महाशयों का कुछ हद तक समर्थन करना चाहिए। इस विचार को स्पष्ट करने के लिए मैं ब्रिटेन की आजकल की दो राजनीतिक दस्तावेज़ों को लूंगा: १) प्रधान मंत्री लॉयड जार्ज का १८ मार्च १९२० का भाषण (जिसकी रिपोर्ट मैंचेस्टर गार्जियन के १९ मार्च १९२० के अंक में छपी है); और २) उपरोक्त लेख में एक "उग्रवादी" कम्युनिस्ट कॉमरेड सिल्विया पैंकहर्स्ट के तर्क।

एस्क्विथ के खिलाफ़ (जिसे इस बैठक में खास तौर पर बुलाया गया था, पर जिसने आने से इनकार कर दिया था) और उन लिबरलों (उदारपंथियों) के खिलाफ़ बोलते हुए, जो टोरियों से (कंजरवेटिव पार्टी वालों से) संयुक्त मोर्चा नहीं बनाना चाहते थे बल्कि लेबर पार्टी से अधिक घनिष्ठ सम्बंध स्थापित करना चाहते थे (कॉमरेड गैलेकर ने भी अपने पत्र में बताया है कि लिबरल लोग स्वतंत्र लेबर पार्टी में शामिल हो रहे हैं), लॉयड जार्ज ने कहा कि लिबरल पार्टी वालों और कंजरवेटिव पार्टीवालों के बीच संयुक्त मोर्चा बनाना, और

यह भी एक गठा हुआ संयुक्त मोर्चा बनाना, अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा लेबर पार्टी की जीत हो जाने खतरा है। लेबर पार्टी को लॉयड जार्ज "समाजवादी" कहना पसंद करते हैं, क्योंकि उनके विचार में यह पार्टी उत्पादन के साधनों पर "सामूहिक स्वामित्व" क़ायम करने की कोशिश कर रही है। "फ्रांस में इसी चीज़ को कम्युनिज़्म कहा गया था"— ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग के नेता ने अपने सुननेवालों की समझ में आने वाले शब्दों का प्रयोग करते हुए कहा, क्योंकि उनके सुननेवाले पार्लामेंट के लिबरल सदस्य थे और उन्हें शायद यह बात अभी तक मालूम नहीं थी। इस नेता ने आगे कहा : "जर्मनी में इसे समाजवाद कहा गया था और रूस में इसी का नाम बोल्शेविज़्म है।" लॉयड जार्ज ने आगे समझाया कि लिबरल लोग इस चीज़ को सिद्धान्ततः नहीं मान सकते, क्योंकि वे व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। "सभ्यता खतरे में है," वक्ता ने ऐलान किया, और इसलिए लिबरलों और कंज़रवेटिवों को एक हो जाना चाहिए ...।

> "...यदि आप खेतिहर इलाक़ों में जायें", लॉयड जार्ज ने कहा : "तो मैं मानता हूं कि वहां पार्टियों के पुराने भेद पहले जैसे ही मज़बूत हैं। ये इलाक़े खतरे से दूर हैं। संकट अभी उनकी गलियों में मंडराता नहीं दिखाई देता। पर जब वह उन्हें दिखाई देने लगेगा तो ये इलाके भी उतने ही मज़बूत हो जायेंगे, जितने मज़बूत कुछ औद्योगिक क्षेत्र अब हैं। इस देश के पांच में से चार हिस्से औद्योगिक और व्यापारिक हैं, और मुश्किल से एक हिस्सा खेतिहर है। जब मैं भविष्य में आनेवाले खतरों के बारे में सोचता हूं, तो यह बात बराबर मेरे दिमाग़ में रहती है। फ्रांस में आबादी खेतिहर है और वहां एक बहुत ठोस ढंग का जनमत है जो जल्दी नहीं हिलता, और न आसानी से क्रान्तिकारी आंदोलनों की गरमी में आता है। यहां यह हालत नहीं है। यह देश संसार के और किसी भी देश से अधिक संतुलन-हीन है और यदि इस देश में भूचाल आया, तो इसी वजह से यहां ध्वंस भी दूसरे किसी भी देश से अधिक भयंकर होगा।"

इससे पाठक देखेंगे कि मि. लॉयड जार्ज न सिर्फ़ बहुत होशियार आदमी हैं, बल्कि उन्होंने मार्क्सवादियों से भी बहुत कुछ सीखा है। कोई गुनाह नहीं होगा यदि हम भी लॉयड जार्ज से कुछ सीखने की कोशिश करें।

लॉयड जार्ज के भाषण के बाद जो बहस हुई, उसके दौरान में एक दिलचस्प घटना हुई, जो इस प्रकार थी :

"मि० वैलेस (पार्लामेंट के सदस्य): मैं यह जानना चाहूंगा कि प्रधान मंत्री की राय में इसका उन औद्योगिक चुनाव क्षेत्रों के मज़दूरों पर क्या असर होगा, जिनमें से बहुत से आजकल लिबरल हैं और जिनसे हमें इतना समर्थन मिलता है। क्या इसका यह परिणाम होना सम्भव नहीं है कि तुरन्त लेबर पार्टी की ताकत बहुत बढ़ जाय, और जो लोग अभी खुशी से हमारा साथ देते हैं, वे उसका साथ देने लगें?

"प्रधान मंत्री : मेरी राय बिलकुल दूसरी है। इसमें शक नहीं कि लिबरलों को आपस में लड़ते देख कर बहुत से लिबरल निराश हो लेबर पार्टी की ओर चले जाते हैं। आजकल लेबर पार्टी में ऐसे बहुत से लिबरल मिलेंगे, जो बड़े योग्य व्यक्ति हैं और जिनका काम सरकार को बदनाम करना बन गया है। इसका निस्सन्देह यह परिणाम हुआ है कि लेबर पार्टी का समर्थन करनेवाले लोगों की संख्या में अच्छी वृद्धि हो गयी है। ये लोग हमारी पार्टी के बाहर रहनेवाले लिबरलों का समर्थन नहीं करते, बल्कि लेबर पार्टी का समर्थन करते हैं; उप-चुनावों ने यह बात साफ़ तौर पर जाहिर कर दी है।"

यहां चलते-चलते यह भी कह दिया जाय कि ऊपर के इस तर्क से यह बात खास तौर पर साफ़ हो जाती है कि आजकल पूंजीपति वर्ग के सबसे बुद्धिमान लोगों के दिमाग़ भी कितने उलझ गये हैं, और वे ऐसी बेवकूफ़ियां करते हैं कि उनसे होनेवाले नुकसान को पूरा करना असम्भव हो जाता है। यह चीज़ सचमुच पूंजीपति वर्ग का पतन कराके रहेगी। लेकिन हमारे लोग बेवकूफ़ियां करने के बाद भी (ज़ाहिर है

कि यदि वे बहुत बड़ी बेवकूफ़ियां नहीं हैं और जल्दी ही ठीक कर ली जाती हैं, तो) अन्त में विजयी बन कर ही निकलेंगे ।

दूसरी राजनीतिक दस्तावेज़ एक "उग्रवादी" कम्युनिस्ट कॉमरेड सिल्विया पैंकहर्स्ट की है, जिसमें यह दलील दी गयी है :

"...कामरेड इंकपिन (ब्रिटिश समाजवादी पार्टी के प्रधान मन्त्री) ने लेबर पार्टी के बारे में कहा है कि वह 'मज़दूर आन्दोलन की मुख्य संस्था' है। ब्रिटिश समाजवादी पार्टी के एक दूसरे साथी ने तीसरी इन्टरनेशनल के हाल के सम्मेलन में और भी मज़बूती के साथ ब्रिटिश समाजवादी पार्टी के रवैये को पेश किया था। उसने कहा था : 'हम लेबर पार्टी को संगठित मज़दूर वर्ग समझते हैं।'

"हमारा विचार लेबर पार्टी के बारे में यह नहीं है। लेबर पार्टी संख्या में बहुत बड़ी है, गोकि उसके सदस्य बहुत हद तक उदासीन और निष्क्रिय हैं, और उनमें से अधिकतर ऐसे स्त्री-पुरुष हैं जो ट्रेड यूनियनों के मेम्बर इसलिए बन गये हैं क्योंकि उनके साथ काम करनेवाले मज़दूर उनके मेम्बर हैं, और इसलिए कि सुविधाओं और सहायता में उन्हें भी हिस्सा मिल सके।

"परन्तु हम यह बात मानते हैं कि लेबर पार्टी के विशाल आकार का एक कारण यह भी है कि उसे एक ऐसे मत के लोगों ने बनाया है, जिस मत से आगे अभी तक ब्रिटिश मज़दूर वर्ग का बहुमत नहीं बढ़ पाया है; हालांकि लोगों के दिमाग़ों में बड़े परिवर्तन हो रहे हैं और शीघ्र ही वे इस पूरी हालत को बदल देंगे ...।

"अन्य देशों के सामाजिक देशभक्त संगठनों की भांति ही, ब्रिटिश लेबर पार्टी भी समाज के स्वाभाविक विकास के साथ-साथ, लाजिमी तौर पर सत्ता पर कब्ज़ा कर लेगी। कम्युनिस्टों का काम उन ताक़तों को पैदा करना है जो *सामाजिक-देशभक्तों* को उलटेंगे, और इस देश में, हमें इस काम में देर या ढील-ढाल नहीं करनी चाहिए।

"लेबर पार्टी की ताक़त को बढ़ाने में हमें अपनी शक्ति नहीं गंवानी चाहिए; उसका सत्ता पर अधिकार होना तो निश्चित है। हमें अपनी शक्ति केन्द्रित करनी चाहिए उस कम्युनिस्ट आन्दोलन को बनाने पर जो लेबर पार्टी को हरायेगा। लेबर पार्टी जल्दी ही सरकार बनानेवाली है, क्रान्तिकारी विरोधी-पक्ष को उस पर हमला करने की तैयारी करनी चाहिए...।"

इस प्रकार, "दो पार्टियों" की ऐतिहासिक व्यवस्था को (जिसमें दोनों पार्टियां शोषकों की होती हैं), जिसे एक पूरे युग के अनुभव ने पवित्र बना दिया है और जो शोषकों के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई हैं, उदारवादी (लिबरल) पूंजीपति वर्ग त्यागता जा रहा है, और अब लेबर पार्टी से लड़ने के लिए वह अपनी ताक़तों को एकजूट करना आवश्यक समझता है। अनेक लिबरल डूबते जहाज से भागते चूहों की तरह अपनी पार्टी को छोड़ कर लेबर पार्टी में शामिल हो रहे हैं। उग्रवादी कम्युनिस्टों का विश्वास है कि ताक़त की बागडोर का लेबर पार्टी के हाथों में आना निश्चित है और वे यह मानते हैं कि इस समय लेबर पार्टी को अधिकतर मज़दूरों का समर्थन प्राप्त है। पर इससे वे एक बड़ा अजीब नतीज़ा निकालते हैं, जिसे कॉमरेड सिल्विया पैंकहर्स्ट ने इस तरह पेश किया है :

"कम्युनिस्ट पार्टी को समझौता नहीं करना चाहिए...कम्युनिस्ट पार्टी को अपने सिद्धान्तों को शुद्ध और सुधारवाद से अपने को अछूता रखना चाहिए। उसका काम है, बिना रुके या मुड़े, सीधी सड़क से, कम्युनिस्ट क्रान्ति का रास्ता दिखाना।"

इसके विपरीत, यदि ब्रिटेन के अधिकतर मज़दूर अभी ब्रिटिश करेंस्कियों और श्चाइडेमानों का नेतृत्व मानते हैं, और अभी उन्हें इन लोगों की बनायी हुई सरकार का वह अनुभव नहीं प्राप्त हुआ है—जिसकी आवश्यकता रूस और जर्मनी में आम मज़दूरों को कम्युनिज्म की ओर ले आने में पड़ी थी—तो इससे निस्संदेह यह नतीज़ा निकलता है कि ब्रिटिश कम्युनिस्टों को पार्लामेंटी काम में भाग लेना चाहिए; उन्हें पार्लामेंट के अन्दर से जनता को यह दिखाना चाहिए कि हेंडरसन और

स्नोडन की सरकार का व्यवहार में क्या अनुभव होता है; उन्हें लॉयड जार्ज और चर्चिल की मिली-जुली ताक़तों को हराने में हेंडरसन और स्नोडन जैसे लोगों की मदद करनी चाहिए। कोई दूसरा रास्ता अपनाना क्रान्ति के मार्ग में कठिनाइयां पैदा करना है, क्योंकि जब तक मज़दूर वर्ग के बहुमत के विचारों में परिवर्तन नहीं होता, तब तक क्रान्ति असम्भव है; और यह परिवर्तन केवल प्रचार से कभी नहीं होता, यह जनता के राजनीतिक अनुभव से ही होता है। "बिना समझौते के, बिना रुके या मुड़े, रास्ता दिखाना"—यदि कुछ करने में स्पष्टतः असमर्थ मज़दूरों का एक ऐसा अल्पमत यह बात कहता है, जो जानता है (या कम से कम जिसे जानना चाहिए) कि अगर हेंडरसन और स्नोडन ने लॉयड जार्ज और चर्चिल पर फतह पा ली तो अधिकतर लोग बहुत थोड़े दिनों में अपने नेताओं से निराश हो जायेंगे और कम्युनिज़्म का समर्थन करने लगेंगे (या कम से कम कम्युनिस्टों की ओर तटस्थता का, और अधिकतर शुभचिन्तक तटस्थता का रुख अपनायेंगे), तब जाहिर है कि यह नारा ग़लत है। यह तो उसी तरह की बात है मानो दस हजार सिपाही दुश्मन की पचास हजार फ़ौज पर बिना सोचे-समझे टूट पड़े, जब कि उन्हें करना यह चाहिए था कि थोड़ा "रुक" जाते, "मुड़" जाते, या ज़रूरत पड़ने पर "समझौता" तक कर लेते, पर किसी तरह उस एक लाख कोतल सेना के आने तक ठहरे रहते, जो चल पड़ी थी, पर रास्ते में थी, और तुरन्त लड़ाई के मैदान में नहीं उतर सकती थी। यह एक क्रान्तिकारी वर्ग की गम्भीर कार्यनीति नहीं, बल्कि बुद्धिजीवी वर्ग का बचपना है।

क्रान्ति का बुनियादी नियम, जिसे सब क्रान्तियों ने और ख़ास कर बीसवीं सदी में होनेवाली रूस की तीनों क्रान्तियों ने सही साबित कर दिया है, यह है: क्रान्ति के लिए इतना ही काफ़ी नहीं है कि शोषित एवं दलित जनता पुराने ढंग से रहना असम्भव समझने लगी हो और परिवर्तन की मांग कर रही हो; क्रान्ति के लिए आवश्यक है कि शोषकों के लिए भी पुराने ढंग से रहना और शासन करना असम्भव हो गया हो। जब "नीचे के वर्ग" पुराना ढंग नहीं चाहते और जब "ऊपर के

वर्ग" पुराना ढंग चला नहीं सकते—केवल उसी समय क्रान्ति की विजय हो सकती है। दूसरे शब्दों में, इस सत्य को इस प्रकार रखा जा सकता है : बिना एक देशव्यापी संकट के (जो शोषित और शोषक दोनों पर असर डालता हो) क्रान्ति का होना असम्भव है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि क्रान्ति के लिए आवश्यक यह है कि एक तो मज़दूरों का बहुमत (या कम से कम श्रेणी-सजग, विचारशील तथा राजनीतिक रूप से सक्रिय मज़दूरों का बहुमत) क्रान्ति की ज़रूरत को पूरी तरह से समझे और उसके वास्ते अपने प्राणों को बलिदान करने के लिए तैयार हो; दूसरे यह कि शासक वर्ग एक ऐसे सरकार सम्बंधी संकट से गुजर रहे हों; जिसमें सबसे पिछड़ी हुई जनता भी राजनीति में खिंच आती है (हर सच्ची क्रान्ति की एक निशानी यह है कि श्रमजीवी एवं दलित जनता के बीच, राजनीतिक संघर्ष में भाग लेने की योग्यता रखनेवालों की संख्या यकायक दस-गुनी, या यहां तक कि सौ-गुनी भी बढ़ जाती है, और जो पहले संघर्ष से उदासीन रहा करते थे, वे ही आगे बढ़ कर उसमें भाग लेने लगते हैं)। इससे सरकार की कमजोरी बढ़ती जाती है और क्रान्तिकारियों के लिए उसे जल्द से जल्द उलट देना सम्भव हो जाता है।

ब्रिटेन में—जैसा कि अन्य बातों के अलावा, लॉयड जार्ज के भाषण से प्रकट होता है—एक सफल मज़दूर क्रान्ति के लिए आवश्यक दोनों परिस्थितियां साफ़ तौर से परिपक्व हो रही हैं। और उग्रवादी कम्युनिस्टों की ग़लतियां इस समय विशेष रूप से खतरनाक हैं, क्योंकि कुछ क्रान्तिकारी इन दोनों आवश्यक परिस्थितियों की ओर काफ़ी गम्भीरता, काफ़ी सतर्कता, काफ़ी बुद्धिमानी और काफ़ी होशियारी के साथ ध्यान नहीं दे रहे हैं। यदि हम क्रान्तिकारी वर्ग की पार्टी हैं और केवल एक क्रान्तिकारी गुट नहीं हैं, यदि हम चाहते हैं कि जनता हमारे पीछे चले (और यदि हम यह नहीं चाहते तो खतरा है कि हम केवल गाल बजानेवाले बन कर रह जायेंगे), तो हमें एक तो लॉयड जार्ज और चर्चिल को हराने में हेंडरसन या स्नोडन की मदद करनी चाहिए (या कहिए कि उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर करना चाहिए,

से १६१७ तक) रूसी हेंडरसनों और स्नोडनों का, यानी मेन्शेविकों का पर्दाफ़ाश करने की स्वतंत्रता पर जोर दिया और उसे अपने हाथ से नहीं जाने दिया, उसी प्रकार ब्रिटिश कम्युनिस्टों को भी हेंडरसन और स्नोडन जैसे लोगों का पर्दाफ़ाश करने की पूर्ण स्वतंत्रता पर पूरी ताक़त से ज़ोर देना चाहिए और उसे किसी हालत में नहीं छोड़ना चाहिए।

यदि हेंडरसन और स्नोडन जैसे लोग इन शर्तों पर मोर्चा बनाने को राजी हो जाते हैं, तो फ़ायदा हमारा होगा, क्योंकि पार्लामेंटों की सीटों का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं है; ज्यादा से ज्यादा सीटें पाना हमारा उद्देश्य नहीं है। इस सवाल पर हम झुक सकते हैं (दूसरी ओर, हेंडरसन जैसे लोग, और विशेष कर उनके नये दोस्त, या कहना चाहिए कि उनके नये आक़ा—वे लिबरल लोग जो स्वतंत्र लेबर पार्टी में शामिल हो गये हैं—सीटें पाने के लिए बेहद बेचैन हैं)। फ़ायदा हमारा होगा क्योंकि हम जनता के बीच ऐसे समय में अपना आन्दोलन फैला सकेंगे जब कि खुद लॉयड जार्ज ने उनको "भड़का दिया" है; और इस प्रकार हम न सिर्फ़ जल्दी से अपनी सरकार बनाने में लेबर पार्टी को मदद देंगे, बल्कि हेंडरसन जैसे लोगों के खिलाफ़ चलाये जाने वाले कम्युनिस्ट आन्दोलन को, जिसे हम बिना रू-रियायत के चलाते जायेंगे, अधिक तेज़ी से समझने में जनता की भी मदद करेंगे।

यदि हेंडरसन और स्नोडन जैसे लोग इन शर्तों पर हमारे साथ मोर्चा बनाने से इनकार कर देंगे, तो हमारा और भी अधिक फ़ायदा होगा, क्योंकि तब हम जनता के सामने (ध्यान में रहे कि शुद्ध मेन्शेविक पार्टी और घोर अवसरवादी स्वतंत्र लेबर पार्टी के असर की आम जनता भी सोवियतों की समर्थक है) यह बात साबित कर देंगे कि हेंडरसन जैसे लोग तमाम मज़दूरों के एके की तुलना में पूंजीपतियों के साथ अपना घनिष्ठ सम्बंध बनाये रखना ज्यादा ज़रूरी समझते हैं। तब जनता की नज़रों में हम तुरन्त ऊपर उठ जायेंगे, और जनता लॉयड जार्ज के विलक्षण, बहुत सही, और (कम्युनिज्म के लिए) बहुत लाभदायक स्पष्टीकरण के बाद, लॉयड जार्ज-कंजरवेटिव मोर्चे के खिलाफ़ सभी मज़दूरों को एक करने के विचार को बड़ी सहानुभूति से देखेगी। हमारा

फ़ौरन फ़ायदा होगा क्योंकि हम जनता के सामने यह बात साबित कर देंगे कि हेंडरसन और स्नोडन जैसे लोग लॉयड जार्ज को हराने में डरते हैं, अकेले अपनी सरकार बनाने से घबड़ाते हैं, और छिपे-छिपे उस लॉयड जार्ज का समर्थन हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं जो खुले-आम लेबर पार्टी के खिलाफ़ कंज़रवेटिव लोगों से मिलने के लिए अपना हाथ बढ़ा रहा है। ध्यान रहे कि २७ फ़रवरी १९१७ (पुराने पंचांग से) की क्रान्ति के बाद रूस में भी इसी प्रकार की एक परिस्थिति पैदा हो गयी थी और उसके कारण मेन्शेविकों और समाजवादी क्रान्तिकारियों (यानी रूसी हेंडरसनों और स्नोडनों) के खिलाफ़ बोल्शेविकों का प्रचार बहुत सफल हुआ था। हमने मेन्शेविकों और समाजवादी क्रान्तिकारियों से कहा: पूंजीपति वर्ग को अलग हटा कर पूरी ताक़त अपने हाथ में लो, क्योंकि सोवियतों में इस समय तुम्हारा बहुमत है (जून १९१७ में, सोवियतों की पहली अखिल रूसी कांग्रेस में बोल्शेविकों के पास केवल १३ प्रतिशत वोट थे)। परन्तु रूसी हेंडरसन और स्नोडन पूंजीपति वर्ग से ताक़त की बागडोर छीनने में भय खाते थे। जब पूंजीपति वर्ग ने यह अच्छी तरह जान लिया कि नये चुनाव में समाजवादी क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों को * (जिन्होंने एक गठा राजनीतिक मोर्चा बना रखा था, और जो वास्तव में एक-जैसे निम्न-पूंजीवादी जनवाद का प्रतिनिधित्व करते थे) बहुमत मिलेगा, और इस कारण विधान-निर्मात्री परिषद के चुनाव को टालना शुरू किया, तब समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक इस टालमटूल का तेज़ी के साथ और संगत ढंग से मुक़ाबला करने में असमर्थ रहे।

---

* नवम्बर १९१७ में विधान-निर्मात्री परिषद के जो चुनाव हुए और जिनमें ३ करोड़ ६० लाख से अधिक मतदाताओं ने भाग लिया, उनका परिणाम यह निकला: बोल्शेविकों को २५ प्रतिशत वोट मिले; जमींदारों और पूंजीपति वर्ग की विभिन्न पार्टियों को १३ प्रतिशत; और निम्न-पूंजीवादी जनवादी पार्टियों को, यानी समाजवादी क्रान्तिकारियों, मेन्शेविकों और उनसे मिलते जुलते कई छोटे-छोटे दलों को कुल ६२ प्रतिशत वोट मिले।

यदि हेंडरसन और स्नोडन जैसे लोग कम्युनिस्टों के साथ मोर्चा बनाने से इनकार कर देते हैं, तो कम्युनिस्टों को तुरन्त ही जनता की सहानुभूति प्राप्त करने और हेंडरसन तथा स्नोडन जैसे लोगों का असर खतम करने में मदद मिलेगी; और इसके परिणाम-स्वरूप यदि हम पार्लामेंट की कुछ सीटें खो भी बैठें, तो हमारा कोई बड़ा नुक़सान न होगा। हम बहुत थोड़े, पर मज़बूत चुनाव क्षेत्रों से अपने उम्मीदवार खड़े करेंगे, यानी अपने लिए ऐसे क्षेत्र चुनेंगे जिनमें हमारे उम्मीदवार के खड़े होने से लिबरल उम्मीदवार को सीट मिल जाने और लेबर पार्टी के उम्मीदवार के हार जाने का कोई खतरा न हो। हम चुनाव के आन्दोलन में भाग लेंगे, कम्युनिज्म का प्रचार करते हुए परचे बांटेंगे, और उन सभी चुनाव क्षेत्रों में, जहां हमारे उम्मीदवार नहीं होंगे, हम मतदाताओं से लेबर पार्टी के उम्मीदवार के पक्ष में और पूंजीवादी उम्मीदवार के खिलाफ़ वोट देने कहेंगे। कॉमरेड सिल्विया पैंकहर्स्ट और कॉमरेड गैलेकर का यह सोचना ग़लत है कि ऐसा करना कम्युनिज्म के साथ ग़द्दारी करना, सामाजिक ग़द्दारों के खिलाफ़ संघर्ष को तिलांजलि देना है। इसके विपरीत, ऐसा करने से ही निस्संदेह रूप में कम्युनिस्ट क्रान्ति को बल मिलेगा।

इस समय, ब्रिटिश कम्युनिस्टों को अक्सर जनता तक पहुँचने में और यहां तक कि उसे अपनी बात सुनाने में बड़ी कठिनाई होती है। पर यदि मैं एक कम्युनिस्ट की हैसियत से सामने आकर मज़दूरों से कहूं कि लॉयड जार्ज के खिलाफ़ हेंडरसन को वोट दो, तो वे ज़रूर ही मेरी बात सुनेंगे। और तब मैं बड़ी आसानी से उन्हें सिर्फ़ यही नहीं समझा सकूंगा कि सोवियत व्यवस्था पार्लामेंट से क्यों बेहतर है और मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व चर्चिल (पूंजीवादी "जनतंत्र" की रामनामी ओढ़े) के अधिनायकत्व से क्यों बेहतर है, बल्कि मैं उन्हें यह भी समझा सकूंगा कि मैं अपने वोट से हेंडरसन को उसी तरह की मदद देना चाहता हूं, जिस तरह की मदद फांसी पर लटके हुए आदमी को रस्सी देती है—यानी यह समझाऊंगा कि निकट भविष्य में हेंडरसन जैसे लोगों की सरकार की स्थापना साबित कर देगी कि मैं सही हूं। यह

बात जनता को मेरी ओर खींच लायेगी, और हेंडरसन तथा स्नोडन जैसे व्यक्तियों की राजनीतिक मृत्यु की घड़ी को उसी तरह निकट ले आयेगी, जिस तरह कि रूस और जर्मनी में उनके जात-भाइयों की मृत्यु की घड़ी निकट आयी थी।

और यदि यह एतराज किया जाता है कि यह कार्यनीति बहुत "सूक्ष्म" या बहुत पेचीदा है और जनता उसे नहीं समझ पायेगी, और इससे हमारी शक्तियों में फूट और बिखराव पैदा हो जायगा, और इससे हम उन शक्तियों को सोवियत क्रान्ति के लिए केन्द्रित नहीं कर सकेंगे, तो मैं इस तरह का एतराज करनेवाले "उग्रवादियों" से यह कहूंगा : अपना कठमुल्लापन जनता पर मत थोपो! रूस की जनता शायद इंगलैंड की जनता से अधिक शिक्षित नहीं है, बल्कि कुछ कम शिक्षित ही है। फिर भी यहां की जनता ने बोल्शेविकों को समझा; और इस बात से कि सोवियत क्रान्ति के ठीक पहले सितम्बर १९१७ में बोल्शेविकों ने एक पूंजीवादी पार्लामेंट (विधान-निर्मात्री परिषद) के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किये, और सोवियत क्रान्ति के फ़ौरन बाद नवम्बर १९१७ में उस विधान-निर्मात्री परिषद के चुनाव में भाग लिया, जिसे उन्होंने ५ जनवरी १९१८ को भंग कर दिया—इन सब बातों से बोल्शेविकों के काम में कठिनाई नहीं हुई, बल्कि उल्टे उन्हें मदद ही मिली।

ब्रिटिश कम्युनिस्टों के मतभेद के दूसरे प्रश्न की मैं यहां चर्चा नहीं कर सकता—मेरा मतलब लेबर पार्टी में शामिल होने या न होने के सवाल से है। इस सवाल के सम्बंध में मेरे पास बहुत कम मसाला है; और ब्रिटिश लेबर पार्टी के अनोखे स्वरूप के कारण—उसका गठन ही योरप की राजनीतिक पार्टियों के गठन से बहुत भिन्न है—यह सवाल बहुत पेचीदा सवाल बन गया है। फिर भी, इसमें कोई शक नहीं कि इस सवाल पर भी वे लोग लाज़िमी तौर पर ग़लती करेंगे जो क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की कार्यनीति को निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर बनाने की चेष्टा करते हैं : "कम्युनिस्ट पार्टी को अपने सिद्धान्तों को शुद्ध और सुधारवाद से अपने को एकदम अछूता रखना

चाहिए; उसका काम है बिना रुके या मुड़े, सीधी सड़क से, कम्युनिस्ट क्रान्ति का रास्ता दिखाना।" कारण कि ऐसे सिद्धान्त महज फ्रांस के ब्लांक्वीवादी कम्यूनाडों की ग़लतियों को दुहराने के बराबर हैं, जिन्होंने १८७४ में हर प्रकार के समझौतों और बीच की सारी मंजिलों को "तिलांजलि दे दी थी"। दूसरे, इसमें भी कोई शक नहीं कि इस सवाल पर भी, अन्य सवालों की तरह, जरूरत इस बात की है कि हम कम्युनिज्म के आम और बुनियादी सिद्धान्तों को वर्गों और पार्टियों के उन विशेष प्रकार के सम्बंधों पर और वस्तुस्थिति के विकास की उन विशेष प्रकार की बातों पर लागू करना सीखें, जो प्रत्येक देश की विशेषता होती हैं और जिनका अध्ययन करना, जिन्हें खोज निकालना, और जिन्हें महसूस जरूरी होता है।

परन्तु इस विषय की चर्चा केवल ब्रिटिश कम्युनिज्म को लेकर ही नहीं, बल्कि सभी पूंजीवादी देशों में कम्युनिज्म के विकास से सम्बंधित आम नतीजों को लेकर होनी चाहिए। अब हम इस विषय पर विचार करेंगे।

[१०]

कुछ नतीजे

१६०५ की रूसी पूंजीवादी क्रान्ति ने विश्व इतिहास के एक बड़े अनोखे मोड़ की सूचना दी। वह अनोखा मोड़ यह था कि एक बहुत ही पिछड़े हुए पूंजीवादी देश में हड़ताल-आन्दोलन ने ऐसा व्यापक और शक्तिशाली रूप धारण किया जो इससे पहले संसार में कहीं नहीं देखा गया था। १६०५ के केवल पहले महीनों में ही हड़तालियों की संख्या पहले के दस वर्षों (१८६५–१६०४) के सालाना औसत से भी आगे निकल गयी। और जनवरी से अक्तूबर १६०५ तक हड़तालें बराबर फैलतीं और प्रचंड रूप धारण करती गयीं। कुछ एकदम अनोखी ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण, पिछड़े हुए रूस ने पहली बार दुनिया को न सिर्फ़ यह दिखाया कि क्रान्ति के समय दलित जनता की स्वतंत्र हलचल किस तरह छलांगें मारती हुई बढ़ती है (सभी क्रान्तियों में यह चीज़ हुई है), बल्कि यह भी दिखाया कि मज़दूर वर्ग का देश की पूरी आबादी के साथ संख्या में जो अनुपात होता है, उसकी तुलना में मज़दूर वर्ग का राजनीतिक महत्व बहुत अधिक होता है। रूस ने दुनिया को दिखाया कि आर्थिक हड़ताल और राजनीतिक हड़ताल को कैसे मिलाया जाता है, और राजनीतिक हड़ताल को सशस्त्र विद्रोह में कैसे बदला जाता है; और उसने दुनिया को यह दिखाया कि पूंजीवाद द्वारा पीड़ित वर्गों के जन संघर्ष और जन संगठन के एक नये रूप को, यानी सोवियतों को कैसे जन्म दिया जाता है।

फ़रवरी और अक्तूबर १६१७ की क्रान्तियों ने देशव्यापी पैमाने पर सोवियतों का चौमुखी विकास किया, और मज़दूर क्रान्ति ने, समाजवादी क्रान्ति ने, सोवियतों के गले में जय-माल डाल दी। और दो वर्ष से भी कम बीते थे कि सोवियतों का अन्तरराष्ट्रीय रूप भी सबको विदित हो गया; *संघर्ष और संगठन का यह रूप संसार भर के मज़दूर आन्दोलन में फैल गया;* और सोवियतों की, पूंजीवादी पार्लामेंट तथा आम तौर पर पूंजीवादी जनतंत्र की क़ब्र खोदनेवाले इस उत्तराधिकारी और वारिस की ऐतिहासिक भूमिका सारे संसार को मालूम हो गयी।

और भी, मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के इतिहास से अब प्रकट होता है *कि सभी देशों में कम्युनिज़्म का—जो बढ़ रहा है, ताक़त पकड़* रहा है, और विजय की ओर अग्रसर हो रहा है—सबसे पहले अपने (प्रत्येक देश के) मेन्शेविज़्म से, यानी अवसरवाद और सामाजिक-देशाहंकार से, और फिर, उसके एक पूरक के रूप में "उग्रवादी" *कम्युनिज़्म से संघर्ष होनेवाला है। पहला संघर्ष, मालूम पड़ता है, बिना* किसी अपवाद के सभी देशों में फैल गया है, और वह दूसरी इन्टरनेशनल (जो कि लगभग मर चुकी है) और तीसरी इन्टरनेशनल के संघर्ष के रूप में बढ़ा है। दूसरा संघर्ष इन देशों में देखा जा सकता है: *जर्मनी, ब्रिटेन, इटली, अमरीका (यहां कम से कम, "इन्डस्ट्रियल वर्कर्स ऑफ़ दी वर्ल्ड"* नामक संगठन का एक भाग और अराजकतावादी संघ-समाजवादी तत्व, उग्रवादी कम्युनिज़्म की ग़लतियों का समर्थन करते हैं और साथ ही सब के सब, बिना किसी मतभेद के सोवि*यत व्यवस्था को भी मानते हैं)* और *फ्रांस (यहां भी भूतपूर्व संघ-*समाजवादियों का एक हिस्सा सोवियत व्यवस्था को मानने के साथ-साथ राजनीतिक पार्टी बनाने और पार्लामेंट में भाग लेने के खिलाफ़ है)। दूसरे शब्दों में, यह संघर्ष निस्सन्देह रूप से न केवल अन्तरराष्ट्रीय *पैमाने पर, बल्कि पूरी दुनिया के पैमाने पर चल रहा है।*

परन्तु जहां मज़दूर आन्दोलन को हर जगह, पूंजीपति वर्ग पर विजय प्राप्त करने के लिए आवश्यक एक सी शिक्षा प्राप्त करनी पड़ रही है, वहां प्रत्येक देश में यह काम अलग-अलग ढंग से हो रहा है। बड़े-

बड़े उन्नत पूंजीवादी देश बोल्शेविज़्म के मुकाबले में कहीं जल्दी इस रास्ते को ते किये डाल रहे हैं। बोल्शेविज़्म को अपनेको एक संगठित राजनीतिक धारा के रूप में तैयार करने के लिए, इतिहास ने पन्द्रह वर्ष का समय दिया था। पर तीसरी इन्टरनेशनल ने एक वर्ष के थोड़े समय में ही एक निर्णायक विजय प्राप्त कर ली है। उसने उस पीली, सामाजिक-देशाहंकारी दूसरी इन्टरनेशनल को हरा दिया है, जो सिर्फ़ चन्द महीने पहले तीसरी इन्टरनेशनल के मुकाबले में बेहद मज़बूत थी और एकदम जमी हुई और बहुत ताक़तवर मालूम पड़ती थी, और जिसे संसार के पूंजीपति वर्ग का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, माली (मंत्रि-मंडलों में स्थान, पासपोर्ट और अखबारों के रूप में) तथा सैद्धान्तिक, हर प्रकार का समर्थन प्राप्त था।

अब असली बात यह है कि प्रत्येक देश के कम्युनिस्टों को सचेत रूप से अवसरवाद से लड़ने और "उग्रवादी" कठमुल्लेपन से लड़ने के दोनों मुख्य बुनियादी कामों को याद रखना चाहिए; और यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह संघर्ष प्रत्येक देश में उसकी अर्थ-व्यवस्था, राजनीति, संस्कृति, जातीय गठन (आयरलैंड, आदि में), उसके उपनिवेशों, धार्मिक मतभेदों, आदि, की ख़ास विशेषताओं के अनुरूप लाज़िमी तौर पर एक विशेष रूप धारण कर लेता है, और निश्चय ही धारण करेगा। हम हर जगह महसूस कर सकते हैं कि दूसरी इन्टरनेशनल के खिलाफ़ असंतोष बढ़ और फैल रहा है। इसका कारण एक तो उसका अवसरवाद है, दूसरे यह भी इसका एक कारण है कि संसारव्यापी सोवियत प्रजातंत्र स्थापित करने के संघर्ष में क्रान्तिकारी-मज़दूर वर्ग की कार्यनीतियों का निर्देश करने के लिए एक सच्चा केन्द्र, एक सच्चा नेतृत्वकारी केन्द्र बनाने की क्षमता या योग्यता दूसरी इन्टरनेशनल में नहीं है। हमें साफ़ तौर पर समझ लेना चाहिए कि सभी देशों के लिए एक ही मशीन से निकले; ठीक एक ढंग के, बिलकुल एक ठप्पे के कार्यनीति के नियमों के आधार पर ऐसा नेतृत्व करनेवाला केन्द्र हरगिज़ नहीं बनाया जा सकता। जब तक देशों में और क़ौमों में जातीय और राजकीय भेद क़ायम हैं—और ये भेद पूरे संसार के पैमाने

फ़रवरी और अक्तूबर १९१७ की क्रान्तियों ने देशव्यापी पैमाने पर सोवियतों का चौमुखी विकास किया, और मज़दूर क्रान्ति ने, समाजवादी क्रान्ति ने, सोवियतों के गले में जय-माल डाल दी। और दो वर्ष से भी कम बीते थे कि सोवियतों का अन्तरराष्ट्रीय रूप भी सबको विदित हो गया; *संघर्ष और संगठन का यह रूप संसार भर के मज़दूर आन्दोलन में फैल गया;* और सोवियतों की, पूंजीवादी पार्लामेंट तथा आम तौर पर पूंजीवादी जनतंत्र की क़ब्र खोदनेवाले इस उत्तराधिकारी और वारिस की ऐतिहासिक भूमिका सारे संसार को मालूम हो गयी।

और भी, मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के इतिहास से अब प्रकट होता है कि *सभी देशों में* कम्युनिज्म का—जो बढ़ रहा है, ताक़त पकड़ रहा है, और विजय की ओर अग्रसर हो रहा है—सबसे पहले अपने (प्रत्येक देश के) मेन्शेविज्म से, यानी अवसरवाद और सामाजिक-देशाहंकार से, और फिर, उसके एक पूरक के रूप में "उग्रवादी" कम्युनिज्म से संघर्ष होनेवाला है। पहला संघर्ष, मालूम पड़ता है, बिना *किसी अपवाद के सभी देशों में फैल गया है,* और वह दूसरी इन्टरनेशनल (जो कि लगभग मर चुकी है) और तीसरी इन्टरनेशनल के संघर्ष के रूप में बढ़ा है। दूसरा संघर्ष इन देशों में देखा जा सकता है: जर्मनी, ब्रिटेन, इटली, अमरीका (यहां कम से कम, "इन्डस्ट्रियल वर्कर्स ऑफ़ दी वर्ल्ड" नामक संगठन का एक भाग और अराजकतावादी *संघ-समाजवादी तत्व, उग्रवादी कम्युनिज्म की ग़लतियों का* समर्थन करते हैं और साथ ही सब के सब, बिना किसी मतभेद के सोवियत व्यवस्था को भी मानते हैं) और फ्रांस (यहां भी भूतपूर्व संघ-समाजवादियों का एक हिस्सा सोवियत व्यवस्था को मानने के साथ-साथ *राजनीतिक पार्टी बनाने और पार्लामेंट में भाग लेने के ख़िलाफ़ है*)। दूसरे शब्दों में, यह संघर्ष निस्सन्देह रूप से न केवल अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर, बल्कि पूरी दुनिया के पैमाने पर चल रहा है।

परन्तु जहां मज़दूर आन्दोलन को हर जगह, पूंजीपति वर्ग पर *विजय प्राप्त करने के लिए आवश्यक एक सी शिक्षा प्राप्त करनी पड़ रही* है, वहां प्रत्येक देश में यह काम अलग-अलग ढंग से हो रहा है। बड़े-

बड़े उन्नत पूंजीवादी देश बोल्शेविज़्म के मुकाबले में कहीं जल्दी इस रास्ते को तै किये डाल रहे हैं। बोल्शेविज़्म को अपनेको एक संगठित राजनीतिक धारा के रूप में तैयार करने के लिए, इतिहास ने पन्द्रह वर्ष का समय दिया था। पर तीसरी इन्टरनेशनल ने एक वर्ष के थोड़े समय में ही एक निर्णायक विजय प्राप्त कर ली है। उसने उस पीली, सामाजिक-देशाहंकारी दूसरी इन्टरनेशनल को हरा दिया है, जो सिर्फ चन्द महीने पहले तीसरी इन्टरनेशनल के मुकाबले में बेहद मज़बूत थी और एकदम जमी हुई और बहुत ताक़तवर मालूम पड़ती थी, और जिसे संसार के पूंजीपति वर्ग का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, माली (मंत्रि-मंडलों में स्थान, पासपोर्ट और अखबारों के रूप में) तथा सैद्धान्तिक, हर प्रकार का समर्थन प्राप्त था।

अब असली बात यह है कि प्रत्येक देश के कम्युनिस्टों को सचेत रूप से अवसरवाद से लड़ने और "उग्रवादी" कठमुल्लेपन से लड़ने के दोनों मुख्य बुनियादी कामों को याद रखना चाहिए; और यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह संघर्ष प्रत्येक देश में उसकी अर्थ-व्यवस्था, राजनीति, संस्कृति, जातीय गठन (आयरलैंड, आदि में), उसके उपनिवेशों, धार्मिक मतभेदों, आदि, की खास विशेषताओं के अनुरूप लाज़िमी तौर पर एक विशेष रूप धारण कर लेता है, और निश्चय ही धारण करेगा। हम हर जगह महसूस कर सकते हैं कि दूसरी इन्टरनेशनल के खिलाफ़ असंतोष बढ़ और फैल रहा है। इसका कारण एक तो उसका अवसरवाद है, दूसरे यह भी इसका एक कारण है कि संसारव्यापी सोवियत प्रजातंत्र स्थापित करने के संघर्ष में क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की कार्यनीतियों का निर्देश करने के लिए एक सच्चा केन्द्र, एक सच्चा नेतृत्वकारी केन्द्र बनाने की क्षमता या योग्यता दूसरी इन्टरनेशनल में नहीं है। हमें साफ़ तौर पर देशों के लिए एक ही मशीन से निकले, एक ठप्पे के कार्यनीति के नियमों के आधार पर केन्द्र हरगिज़ नहीं बनाया जा सकता। जब तक देशों जातीय और राजकीय भेद क़ायम हैं—और ये भेद पूरे

फ़रवरी और अक्तूबर १६१७ की क्रान्तियों ने देशव्यापी पैमाने पर सोवियतों का चौमुखी विकास किया, और मज़दूर क्रान्ति ने, समाजवादी क्रान्ति ने, सोवियतों के गले में जय-माल डाल दी। और दो वर्ष से भी कम बीते थे कि सोवियतों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप भी सबको विदित हो गया; संघर्ष और संगठन का यह रूप संसार भर के मज़दूर आन्दोलन में फैल गया; और सोवियतों की, पूंजीवादी पार्लामेंट तथा आम तौर पर पूंजीवादी जनतंत्र की क़ब्र खोदनेवाले इस उत्तराधिकारी और वारिस की ऐतिहासिक भूमिका सारे संसार को मालूम हो गयी।

और भी, मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के इतिहास से अब प्रकट होता है कि सभी देशों में कम्युनिज्म का—जो बढ़ रहा है, ताक़त पकड़ रहा है, और विजय की ओर अग्रसर हो रहा है—सबसे पहले अपने (प्रत्येक देश के) मेन्शेविज्म से, यानी अवसरवाद और सामाजिक-देशाहंकार से, और फिर, उसके एक पूरक के रूप में "उग्रवादी" कम्युनिज्म से संघर्ष होनेवाला है। पहला संघर्ष, मालूम पड़ता है, बिना किसी अपवाद के सभी देशों में फैल गया है, और वह दूसरी इन्टरनेशनल (जो कि लगभग मर चुकी है) और तीसरी इन्टरनेशनल के संघर्ष के रूप में बढ़ा है। दूसरा संघर्ष इन देशों में देखा जा सकता है: जर्मनी, ब्रिटेन, इटली, अमरीका (यहां कम से कम, "इन्डस्ट्रियल वर्कर्स ऑफ़ दी वर्ल्ड" नामक संगठन का एक भाग और अराजकतावादी संघ-समाजवादी तत्व, उग्रवादी कम्युनिज्म की ग़लतियों का समर्थन करते हैं और साथ ही सब के सब, बिना किसी मतभेद के सोवियत व्यवस्था को भी मानते हैं) और फ्रांस (यहां भी भूतपूर्व संघ-समाजवादियों का एक हिस्सा सोवियत व्यवस्था को मानने के साथ-साथ राजनीतिक पार्टी बनाने और पार्लामेंट में भाग लेने के खिलाफ़ है)। दूसरे शब्दों में, यह संघर्ष निरसन्देह रूप से न केवल अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर, बल्कि पूरी दुनिया के पैमाने पर चल रहा है।

परन्तु जहां मज़दूर आन्दोलन को हर जगह, पूंजीपति वर्ग पर विजय प्राप्त करने के लिए आवश्यक एक सी शिक्षा प्राप्त करनी पड़ रही है, वहां प्रत्येक देश में यह काम अलग-अलग ढंग से हो रहा है। बड़े-

बड़े उन्नत पूंजीवादी देश बोल्शेविज्म के मुक़ाबले में कहीं जल्दी इस रास्ते को तै किये डाल रहे हैं। बोल्शेविज्म को अपनेको एक संगठित राजनीतिक धारा के रूप में तैयार करने के लिए, इतिहास ने पन्द्रह वर्ष का समय दिया था। पर तीसरी इन्टरनेशनल ने एक वर्ष के थोड़े समय में ही एक निर्णायक विजय प्राप्त कर ली है। उसने उस पीली, सामाजिक-देशाहंकारी दूसरी इन्टरनेशनल को हरा दिया है, जो सिर्फ़ चन्द महीने पहले तीसरी इन्टरनेशनल के मुक़ाबले में बेहद मज़बूत थी और एकदम जमी हुई और बहुत ताक़तवर मालूम पड़ती थी, और जिसे संसार के पूंजीपति वर्ग का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, माली (मंत्रि-मंडलों में स्थान, पासपोर्ट और अखबारों के रूप में) तथा सैद्धान्तिक, हर प्रकार का समर्थन प्राप्त था।

अब असली बात यह है कि प्रत्येक देश के कम्युनिस्टों को सचेत रूप से अवसरवाद से लड़ने और "उग्रवादी" कठमुल्लेपन से लड़ने के दोनों मुख्य बुनियादी कामों को याद रखना चाहिए; और यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह संघर्ष प्रत्येक देश में उसकी अर्थ-व्यवस्था, राजनीति, संस्कृति, जातीय गठन (आयरलैंड, आदि में), उसके उपनिवेशों, धार्मिक मतभेदों, आदि, की खास विशेषताओं के अनुरूप लाजिमी तौर पर एक विशेष रूप धारण कर लेता है, और निश्चय ही धारण करेगा। हम हर जगह महसूस कर सकते हैं कि दूसरी इन्टरनेशनल के खिलाफ़ असंतोष बढ़ और फैल रहा है। इसका कारण एक तो उसका अवसरवाद है, दूसरे यह भी इसका एक कारण है कि संसारव्यापी सोवियत प्रजातंत्र स्थापित करने के संघर्ष में क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की कार्यनीतियों का निर्देश करने के लिए एक सच्चा केन्द्र, एक सच्चा नेतृत्वकारी केन्द्र बनाने की क्षमता या योग्यता दूसरी इन्टरनेशनल में नहीं है। हमें साफ़ तौर पर समझ लेना चाहिए कि सभी देशों के लिए एक ही मशीन से निकले, ठीक एक ढंग के, बिलकुल एक ठप्पे के कार्यनीति के नियमों के आधार पर ऐसा नेतृत्व करनेवाला केन्द्र हरगिज़ नहीं बनाया जा सकता। जब तक देशों में और क़ौमों में जातीय और राजकीय भेद क़ायम हैं—और ये भेद पूरे संसार के पैमाने

पर मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व क़ायम हो जाने के बाद भी बड़े लम्बे समय तक क़ायम रहेंगे—तब तक सभी देशों के कम्युनिस्ट मज़दूर आन्दोलन की अन्तरराष्ट्रीय कार्यनीति की एकता का यह तक़ाज़ा नहीं है कि विविधता को समाप्त कर दिया जाय, या जातीय अथवा राष्ट्रीय भेदों को मिटा दिया जाय (इस समय ऐसा करने की बात सोचना एक मूर्खतापूर्ण स्वप्न देखना है), बल्कि उसका तक़ाज़ा यह है कि कम्युनिज्म के (सोवियत सत्ता और मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व के) बुनियादी सिद्धान्तों को इस प्रकार लागू किया जाय ताकि कुछ विशेष बातों में इन सिद्धान्तों में सही ढंग का हेर-फेर हो सके, और इन सिद्धान्तों को जातीय एवं जातीय-राजकीय भेदों के अनुसार सही ढंग से परिवर्तित करके उनका प्रयोग किया जा सके। हमारा अन्तरराष्ट्रीय लक्ष्य एक है: मज़दूर आन्दोलन के अन्दर अवसरवाद तथा "उग्रवादी" कठमुल्लेपन पर विजय प्राप्त करना, पूंजीपति वर्ग को उलटना, और एक सोवियत प्रजातंत्र तथा मज़दूर अधिनायकत्व की स्थापना करना। पर इस एक अन्तरराष्ट्रीय लक्ष्य की दिशा में बढ़ने का प्रत्येक देश का ठोस ढंग अलग-अलग है। इस ठोस ढंग में क्या चीज़ ख़ास तौर पर उस देश की राष्ट्रीय विशेषता है, विशिष्ट रूप से उसी की अपनी वस्तु है, उसकी खोज करना, उसका अध्ययन करना, पता लगाना, उसे महसूस करना, समझना—यही इस ऐतिहासिक युग का मुख्य काम है, जिसमें से संसार के सभी उन्नत देश (और केवल उन्नत देश ही नहीं) इस समय गुज़र रहे हैं। बड़ी चीज़—उसे पूरी चीज़ तो हरगिज़ नहीं कहा जा सकता, पर बड़ी चीज़ यह ज़रूर है—हमें मिल गयी है, इस अर्थ में कि मज़दूर वर्ग का अग्रदल हमारे साथ आ गया है, इस अर्थ में कि अब वह पार्लामेंटवाद के ख़िलाफ़ सोवियत सरकार के साथ है, पूंजीवादी जनतंत्र के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व के साथ है। अब हमारी सारी कोशिशें, सारा ध्यान अगले क़दम पर केन्द्रित होना चाहिए—जो देखने में कम बुनियादी मालूम पड़ता है, और एक ख़ास दृष्टिकोण से शायद है भी कम बुनियादी, पर जो दूसरी ओर, वास्तव में काम को अमली तौर पर पूरा करने के ज़्यादा नज़दीक है। यह अगला क़दम है:

परिवर्तन के रूपों का, या मज़दूर क्रान्ति की दिशा में बढ़ने के रास्तों का पता लगाना।

मज़दूर वर्ग का अग्रदल सैद्धान्तिक रूप से हमारे साथ आ गया है। यह ख़ास चीज़ है। उसके बग़ैर हम विजय की ओर पहला क़दम भी नहीं उठा सकते। पर विजय अब भी बहुत दूर है। अकेला अग्रदल विजय प्राप्त नहीं कर सकता। अग्रदल को अकेले एक निर्णयकारी युद्ध में झोंक देना, उसे ऐसे समय लड़ाई में उतार देना, जब पूरा वर्ग, जब आम जनता, उसकी सहायता करने को नहीं उठ खड़ी हुई है, या कम से कम जब तक उसने अग्रदल के प्रति शुभचिन्तक तटस्थता का रुख नहीं अपना लिया है, और जब तक उसके द्वारा दुश्मन के समर्थन किये जाने की सम्भावना एकदम ख़तम नहीं हो गयी है—यह महज़ मूर्खता ही नहीं, बल्कि भयंकर अपराध है। और ऐसी हालत पैदा करने के लिए जिसमें पूरा वर्ग, जिसमें आम मेहनतकश जनता और वे सभी लोग, जो पूंजी के अत्याचार से पीड़ित हैं, ऐसा रुख अपना सकें, केवल प्रचार और शिक्षा-कार्य ही काफ़ी नहीं है। इसके लिए ज़रूरी है कि जनता खुद राजनीतिक अनुभव प्राप्त करे। यह सभी महान क्रान्तियों का बुनियादी नियम है, जो अब न सिर्फ़ रूस में बल्कि जर्मनी में भी आश्चर्य-जनक रूप से और स्पष्टता के साथ सिद्ध हो गया है। न सिर्फ़ रूस की असंस्कृत, बहुधा निरक्षर जनता को, बल्कि जर्मनी की बहुत सुसंस्कृत और पूर्णतः साक्षर जनता को भी, कम्युनिज़्म की ओर दृढ़ता से मुड़ने के लिए पहले स्वयं अपने कटु अनुभव से यह सीखना पड़ा कि दूसरी इन्टरनेशनल के महारथियों की सरकार बिलकुल निकम्मी और नपुंसक, पूंजीपति वर्ग के सामने दुम हिलानेवाली और बिलकुल निस्सहाय सरकार होती है। जनता को अनुभव से ही यह सीखना पड़ा कि यदि मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व क़ायम नहीं होता है, तो फिर लाज़िमी तौर पर घोर प्रतिक्रियावादियों (रूस में कौर्निलोव और जर्मनी में कैप्प और उसका गुट) का अधिनायकत्व उसकी पीठ पर लद जायगा।

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के श्रेणी-सजग अग्रदल, यानी कम्युनिस्ट पार्टियों, दलों और धाराओं के सामने आज तात्कालिक काम

यह है कि वे श्राम जनता को (जो इस समय अधिकतर सो रही है, उदासीन है, दैनिक जीवन की रूढ़ियों से बंधी है, निष्क्रिय है और सुषुप्तावस्था में है) उसकी नयी स्थिति तक, नया रुख अपनाने की स्थिति तक पहुँचाने में कामयाब हों। यानी उनका काम सिर्फ़ अपनी पार्टी का ही नहीं, बल्कि आम जनता का भी नेतृत्व करना है, ताकि वह नयी स्थिति की ओर बढ़ सके, अपना रुख बदल सके। पहला ऐतिहासिक काम (यानी मज़दूर वर्ग के श्रेणी-सजग अग्रदल को सोवियत सत्ता तथा मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व का समर्थक बना देना) अवसरवाद और सामाजिक-देशाहंकार पर पूर्ण सैद्धान्तिक एवं राजनीतिक विजय प्राप्त किये बिना पूरा नहीं हो सकता। परन्तु दूसरा काम, जो अब तात्कालिक काम बन जाता है—यानी जनता को उस नयी स्थिति तक ले आने का काम जिससे क्रान्ति में अग्रदल की विजय पक्की हो हो जाय—उग्रवादी कठमुल्लेपन को दूर किये बिना, उसकी ग़लतियों पर पूरी तरह क़ाबू पाये बिना पूरा नहीं हो सकता।

जब तक सवाल सिर्फ़ मज़दूर वर्ग के अग्रदल को कम्युनिज्म की ओर खींचने का था (और जिस हद तक यह आज भी है), तब तक और उस हद तक प्रचार का कार्य ही प्रधान था; यहां तक कि उन परिस्थितियों में प्रचार-चक्र भी, चक्रों की भावना के सभी दोषों के बावजूद, लाभदायक होते हैं और उनसे फ़ायदा होता है। परन्तु जब सवाल जनता के अमली काम का है, या हम यह कहें कि जब सवाल बड़ी-बड़ी सेनाओं को मैदान में उतारने और अन्तिम तथा निर्णयकारी युद्ध के लिए समाज विशेष की सभी वर्ग-शक्तियों की मोर्चेबन्दी करने का है, तब केवल प्रचार-कार्य की आदतों से, "शुद्ध" कम्युनिज्म के सत्यों को तोते की तरह दुहराने से काम नहीं चलता है। ऐसी परिस्थिति में हमें गिनती हजारों में नहीं करनी चाहिए, जैसा कि वह प्रचारक करता है जिसका सम्बंध एक ऐसे दल से होता है जिसे अभी जनता का नेतृत्व करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ है, बल्कि ऐसी परिस्थिति में हमें गिनती लाखों और करोड़ों में करनी चाहिए। ऐसी परिस्थिति में हमें अपने से सिर्फ़ यह सवाल नहीं करना है कि हमने क्रान्तिकारी वर्ग के

अग्रदल को अपनी बात अच्छी तरह से समझा दी है या नहीं, बल्कि यह भी पूछना है कि सभी वर्गों की—बिना किसी अपवाद के समाज विशेष के सभी वर्गों की—ऐतिहासिक रूप से प्रभाव डालनेवाली शक्तियों की मोर्चेबन्दी और उनके आपसी सम्बंध इस प्रकार के हो गये हैं या नहीं कि निर्णयकारी युद्ध के लिए हर वस्तु परिपक्व हो गयी हो। यानी हमें अपने से पूछना है कि समाज के सभी वर्गों की शक्तियों की ऐसी मोर्चेबंदी हो चुकी है या नहीं, जिसमें : १) हमारी विरोधी सभी वर्ग-शक्तियां आपस में काफ़ी उलझ गयी हों, एक-दूसरे से काफ़ी टकराने लगी हों, अपनी सामर्थ्य से बाहर के युद्ध में भाग लेकर अपने को काफ़ी कमज़ोर बना चुकी हों; २) सभी ढुलमुल, अस्थिर, बीच के तत्वों ने—निम्न-पूंजीवादी वर्ग और निम्न-पूंजीवादी जनवादियों ने, जिन्हें पूंजीपति वर्ग से अलग करके देखना चाहिए— अपने व्यावहारिक दिवालियापन के ज़रिए अपने को जनता की नज़रों में काफ़ी गिरा लिया हो; ३) मज़दूर वर्ग में पूंजीपति वर्ग के खिलाफ़ बहुत ही दृढ़, हद दर्जे का साहसपूर्ण और क्रान्तिकारी क़दम उठाने के पक्ष में प्रबल और आम भावना पैदा हो गयी हो और तेज़ी से बढ़ने-फैलने लगी हो। जब ऐसी हालत पैदा हो जाय, तब समझना चाहिए कि क्रान्ति के लिए परिस्थिति सचमुच परिपक्व हो गयी है; और यदि हमने ऊपर संक्षेप में बतायी गयी सभी बातों का ठीक-ठीक मूल्यांकन किया है और सही वक्त चुना है, तब यह समझना चाहिए कि हमारी विजय निश्चित है।

चर्चिलों तथा लॉयड जार्जों के मतभेद—और कुछ महत्वहीन राष्ट्रीय अन्तर के साथ इस तरह के लोग सभी देशों में पाये जाते हैं—और हेंडरसनों तथा लॉयड जार्जों के मतभेद, शुद्ध यानी हवाई कम्युनिज़्म के दृष्टिकोण से अर्थात ऐसे कम्युनिज़्म के दृष्टिकोण से जो अभी परिपक्व होकर व्यावहारिक, राजनीतिक जन संघर्ष की अवस्था तक नहीं पहुँचा है, बहुत ही गौण और महत्वहीन होते हैं। परन्तु जनता के व्यावहारिक संघर्ष के दृष्टिकोण से ये मतभेद बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं। इन मतभेदों को ध्यान में रखना, उस

घड़ी को निश्चित करना जब इन "दोस्तों" के अवश्यम्भावी झगड़े, जो इन सभी "दोस्तों" को कमज़ोर और अशक्त बनाते हैं, पूरी तरह परिपक्व हो गये हों—यह असली बात है; यही उस प्रत्येक कम्युनिस्ट का पूरा काम है जो केवल विचारों का श्रेणी-सजग और दृढ़निष्ठ प्रचारक ही नहीं बनना चाहता, बल्कि क्रान्ति में जनता का व्यावहारिक नेता बनना चाहता है। कम्युनिज़्म के विचारों के प्रति सच्ची वफ़ादारी के साथ-साथ आवश्यक है कि हम हर प्रकार के आवश्यक व्यावहारिक समझौते करने, दांव-पेंच चलाने, पैंतरे बदलने, पीछे हटने, आदि की भी योग्यता रखते हों। दोनों चीज़ों को मिलाकर ही हम हेंडरसनों (यानी दूसरी इन्टरनेशनल के महारथियों के, और यदि व्यक्तियों की चर्चा नहीं करनी है, तो निम्न-पूंजीवादी जनवाद के उन प्रतिनिधियों के, जो अपने को समाजवादी कहते हैं) द्वारा राजनीतिक सत्ता पर अधिकार किये जाने और फिर उसे गंवा दिये जाने में योग दे सकेंगे। तभी हम उनका दिवालियापन अमल में साबित कर सकेंगे। तभी हम जनता को सही तौर पर अपने विचारों की शिक्षा दे सकेंगे, और उसे कम्युनिज़्म की ओर ले आ सकेंगे। तभी हम हेंडरसनों, लॉयड जार्जों, और चर्चिलों के (या मेन्शेविकों, समाजवादी-क्रान्तिकारियों, वैधानिक-जनवादियों और बादशाहत के समर्थकों के; अथवा श्चाइडेमानों, पूंजीपति वर्ग तथा कैप्पवादियों के) अनिवार्य मतभेदों, झगड़ों, संघर्षों और गहरी फूट को बढ़ा सकेंगे; और वह सही घड़ी चुन सकेंगे, जब "पवित्र व्यक्तिगत सम्पत्ति के इन स्तम्भों" की फूट अपनी चरमावस्था पर पहुँची होगी, ताकि ऐसी घड़ी में मजदूर वर्ग दृढ़ निश्चय के साथ हल्ला बोले, इन सबको एक साथ हरा दे, और सत्ता पर क़ब्ज़ा कर ले।

सबसे अधिक प्रगतिशील वर्ग की अच्छी से अच्छी पार्टियां और अधिक से अधिक श्रेणी-सजग अग्रदल जिस बात की कल्पना कर सकते हैं, इतिहास आम तौर पर, और क्रान्तियों का इतिहास खास तौर पर, उससे कहीं अधिक विचित्र-विविध, रंग-बिरंगा, सजीव और "सूक्ष्म" होता है। यह बात समझ में आनी चाहिए, क्योंकि अच्छे से अच्छे अग्रदल भी केवल हजारों आदमियों की वर्ग-चेतना, निश्चय, भावना

और कल्पना को ही व्यक्त कर सकते हैं, जब कि क्रान्तियां वर्गों के तीव्रतम संघर्ष से प्रेरित करोड़ों आदमियों की वर्ग-चेतना, निश्चय, भावना और कल्पना से ओतप्रोत सभी मानव क्षमताओं के विशेष उभार और उठान की घड़ी में होती हैं। इससे दो बहुत महत्वपूर्ण अमली नतीजे निकलते हैं : पहला, यह कि क्रान्तिकारी वर्ग को अपना काम पूरा करने के लिए, बिना किसी अपवाद के सामाजिक संघर्ष के सभी रूपों में, सभी पहलुओं में पारंगत होना चाहिए (इस विषय में जो कुछ वह राजसत्ता पर अधिकार करने के पहले पूरा नहीं कर पाता, उसे सत्ता पर अधिकार करने के बाद पूरा करना पड़ता है, और कभी-कभी इस चीज़ से बड़े खतरे पैदा हो जाते हैं); दूसरा, यह कि क्रान्तिकारी वर्ग को बहुत ही जल्दी के साथ और बड़े अप्रत्याशित ढंग से एक रूप को छोड़कर दूसरा रूप अपनाने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए।

हर आदमी मानेगा कि यदि कोई सेना उन तमाम शस्त्रों को चलाना या युद्ध के उन तमाम तौर-तरीक़ों को इस्तेमाल करना नहीं सीखती जो दुश्मन के पास हैं या जिनके दुश्मन के पास होने की सम्भावना है, तो वह सेना बड़ी मूर्खता का काम करती है, बल्कि कहना चाहिए कि मुजरिमाना काम करती है। परन्तु यह बात युद्ध से ज्यादा राजनीति के लिए सही है। राजनीति में पहले से यह सोच लेना और भी कठिन होता है कि भविष्य में उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियों में लड़ाई के कौन से तरीक़े इस्तेमाल करने पड़ेंगे और कौन से अपने लिए फ़ायदेमंद होंगे। यदि हम लड़ाई के सभी तरीक़ों पर अधिकार नहीं प्राप्त कर लेते, तो सम्भव है कि दूसरे वर्गों की स्थिति में ऐसे परिवर्तन हो जायें जिन पर हमारा कोई नियंत्रण न हो और उनकी वजह से काम के ऐसे रूप सामने आ जायें जिनमें हम विशेष रूप से कमजोर हों, और तब हमारी सख्त हार हो। हो सकता है कि तब हम फ़ैसलाकुन ढंग से शिकस्त खा जायें। परन्तु यदि हम लड़ाई के सभी तरीक़ों पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं तो हमारी विजय निश्चित हो जायगी; क्योंकि यदि परिस्थितियों के कारण हम दुश्मन के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक हथियारों का, उस पर सबसे तेज

और मर्मान्तक चोट करनेवाले अस्त्र-शस्त्रों का इस्तेमाल नहीं भी कर पाते, तो भी यह बात तो रहती ही है कि हम सबसे आगे बढ़े हुए और सचमुच क्रान्तिकारी वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अनुभवहीन क्रान्तिकारी अक्सर सोचते हैं कि संघर्ष के क़ानूनी तरीक़े अवसरवादी होते हैं, क्योंकि इस क्षेत्र में पूंजीपति वर्ग ने विशेष रूप से (और खास तौर पर "शान्तिमय", ग़ैर-क्रान्तिकारी काल में) बार-बार मज़दूरों को धोखा दिया है और बेवकूफ़ बनाया है; और ये अनुभवहीन क्रान्तिकारी *ग़ैर-क़ानूनी तरीक़ों को क्रान्तिकारी समझते हैं। पर यह बात सच नहीं है।* जो बात सच है, वह यह है कि वे पार्टियां और नेता अवसरवादी और ग़द्दार हैं, जो वैसी परिस्थितियों में भी ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े इस्तेमाल करने को तैयार नहीं होते, या उसकी योग्यता नहीं रखते (यह मत कहो कि तुम उन्हें इस्तेमाल कर नहीं सकते, बल्कि यह कहो कि इस्तेमाल करोगे नहीं!)—जैसी परिस्थिति १६१४–१८ के साम्राज्यवादी युद्ध में उस समय पैदा हो गयी थी, जब कि स्वतंत्र से स्वतंत्र जनवादी देशों के पूंजीपति वर्ग ने बहुत ही हृदयहीनता और क्रूरता के साथ मज़दूरों को धोखा दिया था और उन्हें युद्ध के लुटेरे स्वरूप के बारे में सच्ची बात बोलने से भी रोक दिया था। परन्तु जो क्रान्तिकारी हर तरह के क़ानूनी संघर्ष के साथ संघर्ष के ग़ैर-क़ानूनी तरीक़ों को मिलाना नहीं जानते, वे बहुत घटिया किस्म के क्रान्तिकारी हैं। जब क्रान्ति शुरू हो चुकी है और अपनी चरम अवस्था पर पहुँच गयी है, जब हर आदमी धारा में पड़ कर खुद-ब-खुद क्रान्ति में शामिल हुआ जा रहा है, जब क्रान्ति में भाग लेना फ़ैशन बन गया है, और यहां तक कि जब बहुत से लोग *अपना स्वार्थ* साधने के लिए भी क्रान्ति में शामिल हो रहे हैं, तब उस समय किसी के लिए भी क्रान्तिकारी बनना कठिन नहीं है। ऐसे झूठे क्रान्तिकारियों से अपने को "मुक्त" करने के लिए, मज़दूर वर्ग को अपनी विजय के बाद बहुत कठिन प्रयत्न करना पड़ता है, बल्कि यह कहना चाहिए कि उसे शहादत की तकलीफ़ें उठानी पड़ती हैं। क्रान्तिकारी बनना उस समय कहीं अधिक कठिन—और कहीं अधिक मूल्यवान—होता है जब प्रत्यक्ष, खुले, सचमुच में *आम और सही मानों में क्रान्तिकारी संघर्ष* के लिए

परिस्थितियां अभी तैयार नहीं हुई हैं। ऐसी परिस्थिति में गैर-क्रान्तिकारी संस्थाओं के अन्दर, यहां तक कि एकदम प्रतिक्रियावादी संस्थाओं के अन्दर भी, और ऐसी जनता के बीच जो तत्काल क्रान्तिकारी तरीकों को पसन्द करने की योग्यता नहीं रखती, (प्रचार, आन्दोलन और संगठन के द्वारा) क्रान्ति के हितों का समर्थन और रक्षा करना, कहीं अधिक कठिन और कहीं अधिक मूल्यवान होता है। जनता को असली, अन्तिम, निर्णायक एवं महान क्रान्तिकारी संघर्ष तक पहुँचा देनेवाले विशेष मार्ग का या विशिष्ट घटना-क्रम का पता लगा पाना, उसे खोज पाना, उसे सही तौर पर निश्चित कर सकना—यही आज पश्चिमी योरप और अमरीका में कम्युनिज्म का मुख्य काम है।

ब्रिटेन एक उदाहरण है। हम नहीं कह सकते और पहले से कोई नहीं कह सकता कि वहां कितनी जल्दी एक सच्ची मजदूर क्रान्ति भड़क उठेगी; और जो विशाल जनता वहां अभी सुषुप्तावस्था में है, उसे कौन सा तात्कालिक कारण उठा कर खड़ा कर देगा, उसमें क्रान्ति की आग जला देगा, और उसे संघर्ष में धकेल देगा। इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि हम तैयारी का अपना काम इस ढंग से चलायें ताकि हम अपने 'चारों खुरों से दुरुस्त रहें' (जैसा प्लेखानोव उस समय कहा करते थे जब वह मार्क्सवादी और क्रान्तिकारी थे)। सम्भव है कि एक पार्लामेंटी संकट दुश्मन पर पहली चढ़ाई के लिए रास्ता खोल दे और क्रान्ति का श्रीगणेश करे। यह भी सम्भव है कि औपनिवेशिक एवं साम्राज्यवादी विरोधों से, जो दिन-ब-दिन और उलझते तथा अधिकाधिक कष्टदायक एवं उग्र बनते जा रहे हैं, पैदा होनेवाला कोई संकट यह काम करे। और यह भी मुमकिन कि कोई तीसरा कारण ही क्रान्ति का श्रीगणेश करे। हम यहां यह चर्चा नहीं कर रहे हैं कि ब्रिटेन में किस ढंग के संघर्ष से मजदूर क्रान्ति के भाग्य का निर्णय होगा (किसी एक भी कम्युनिस्ट को इस सवाल के बारे में जरा भी सन्देह नहीं है, हम सब के लिए यह सवाल तै हो चुका है, और निश्चित रूप से तै हो चुका है)। हम यहां चर्चा कर रहे हैं उस तात्कालिक कारण की जो इस समय सुषुप्तावस्था में पड़ी मजदूर जनता को जगाकर सीधे क्रान्ति की ओर

ले आयेगी। मिसाल के तौर पर फ्रांसीसी पूंजीवादी प्रजातंत्र को ही ले लीजिए। वहां की एक ऐसी परिस्थिति में, जो अन्तरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय दोनों दृष्टियों से वर्तमान परिस्थिति से सौ-गुनी कम क्रान्तिकारी थी, एक बहुत ही *"अप्रत्याशित"* और *"छोटे"* तात्कालिक कारण ने (ड्रेफ़स का मामला[१४]) जनता को गृहयुद्ध के कगार पर पहुँचा दिया था; हालांकि इसे सभी जानते हैं कि प्रतिक्रियावादी सैनिक-वर्ग हज़ारों क़िस्म की ऐसी बेईमानियां किया करता है।

ब्रिटेन में कम्युनिस्टों को पार्लामेंट के चुनावों का, और ब्रिटिश सरकार की आयरलैंड-सम्बंधी, औपनिवेशिक एवं संसारव्यापी साम्राज्य-वादी नीति के सभी उतार-चढ़ावों का, और सार्वजनिक जीवन के अन्य क्षेत्रों और पहलुओं का एक नये ढंग से, कम्युनिस्ट ढंग से, दूसरी इन्टरनेशनल के ढंग से नहीं, बल्कि तीसरी इन्टरनेशनल के ढंग से, बराबर, लगातार और बिना इधर-उधर बहके इस्तेमाल करना चाहिए। *मेरे पास यहां न इतना समय है, न इतनी जगह कि विस्तार से बताऊं* कि "रूसियों" या "बोल्शेविकों" ने पार्लामेंट के चुनावों और पार्लामेंट के संघर्ष में भाग लेने के लिए कौन से तरीक़े अपनाये थे। परन्तु मैं दूसरे देशों के कम्युनिस्टों को विश्वास दिला सकता हूँ कि पश्चिमी योरप के साधारण पार्लामेंटी आन्दोलनों से उनका तरीक़ा बिलकुल भिन्न था। इससे अक्सर यह नतीजा निकाल लिया जाता है: "हां, रूस में वैसी हालत थी, पर हमारे देश में पार्लामेंट का काम दूसरे ढंग से चलता है।" यह एक ग़लत निष्कर्ष है। विभिन्न देशों में तीसरी इन्टरनेशनल को माननेवाले कम्युनिस्टों का तो अस्तित्व ही इसलिए है कि वे पार्लामेंटी काम के पुराने समाजवादी, ट्रेड यूनियनवादी, संघ समाजवादी ढंग को नये, कम्युनिस्ट ढंग में बदल दें। रूस में भी हमेशा चुनावों में अवसरवाद, शुद्ध पूंजीवादी व्यापारवाद और पूंजीवादी धोखा-धड़ी का बोलबाला रहा करता था। पश्चिमी योरप और अमरीका के कम्युनिस्टों को एक नये, असाधारण, ग़ैर-अवसरवादी, निस्वार्थी पार्लामेंटवाद को जन्म देने की कला सीखनी चाहिए। कम्युनिस्ट पार्टियों को अपने नारे जारी करने चाहिए। असली मज़दूरों को चाहिए कि वे

जगह-जगह फैल जायें और असंगठित एवं दलित शरीरों की मदद से परचों का वितरण करें; वे मज़दूरों के यहां और दूर के गांवों में बिखरे ग्रामीण श्रमजीवियों तथा किसानों के घरों पर प्रचार करने के लिए जायें (सौभाग्य से योरप में दूर के गांवों की संख्या रूस से कई गुनी कम है, और इंगलैंड में तो ऐसे गांव बहुत ही कम हैं)। उन्हें मामूली से मामूली होटलों और ढाबों में जाना चाहिए; यूनियनों, सभा-समितियों, और ऐसी तमाम जगहों में घुसना चाहिए जहां आम लोग जमा होते हैं, और जनता से बातें करनी चाहिए, पर पंडिताऊ भाषा में (या बहुत पार्लामेंटी भाषा में) नहीं। उन्हें पार्लामेंट की "सीटों पर क़ब्जा करने" की कदापि कोशिश नहीं करनी चाहिए, बल्कि जनता को उठाने, जगाने और उसे संघर्ष में खींचने की कोशिश करनी चाहिए। उन्हें पूंजीपति वर्ग के ऐलानों से फ़ायदा उठाना चाहिए। पूंजीपति वर्ग ने जो मशीन बनायी है, जो चुनाव तै किये हैं, जनता के नाम जो अपीलें निकाली हैं, उनका इस्तेमाल करना चाहिए, और जनता को बताना चाहिए कि बोल्शेविज़्म क्या है। चुनाव के समय यह काम जिस ढंग से किया जा सकता है, वह (पूंजीवादी शासन में) और कभी (ज़ाहिर है कि बड़ी हड़तालों के समय को छोड़कर, जब कि रूस में जनता के बीच प्रचार करने का ठीक ऐसा ही एक यंत्र और भी ज़ोरों से काम करता था) नहीं किया जा सकता। पश्चिमी योरप और अमरीका में यह काम बहुत कठिन है, सच में बहुत ही कठिन है। परन्तु वह किया जा सकता है, और उसे करना है, क्योंकि कम्युनिज़्म का उद्देश्य बिना मेहनत के, बिना कोशिश के, पूरा नहीं हो सकता। और हमारी कोशिशों का मक़सद अमली कामों को पूरा करना होना चाहिए—ऐसे अमली कामों को पूरा करना होना चाहिए जो सामाजिक जीवन की सभी शाखाओं से ज़्यादा से ज़्यादा घनिष्ठ सम्बंध रखनेवाले और अधिकाधिक विविध प्रकार के हों, और जिनके द्वारा हम पूंजीपति वर्ग से शाखा के बाद शाखा और क्षेत्र के बाद क्षेत्र छीनते जायें।

इसके अलावा, ब्रिटेन में फ़ौजों के बीच और स्वयं "अपने" राज्य की दलित एवं अधिकार-हीन जातियों (आयरलैंड, उपनिवेशों,

आदि) के बीच प्रचार, आन्दोलन और संगठन का काम भी एक नये ढंग से (समाजवादी नहीं बल्कि कम्युनिस्ट ढंग से, सुधारवादी नहीं बल्कि क्रान्तिकारी ढंग से) करना चाहिए। कारण कि साम्राज्यवाद के युग में आम तौर पर, और युद्ध के बाद अब खास तौर पर—युद्ध ने विभिन्न क़ौमों पर मुसीबतों का पहाड़ तोड़ दिया है और बहुत जल्दी उनकी आंखें खोल दी है (उदाहरण के लिए, युद्ध में करोड़ों को केवल यह तै करने के लिए जान देनी पड़ी या जखमी होना पड़ा कि अंग्रेज़ डाकू ज्यादा उपनिवेशों को लूटेंगे या जर्मन डाकू)—सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में विशेष रूप से विस्फोटक मसाला जमा हो रहा है और उनके कारण अनेक झगड़े और संकट पैदा हो रहे हैं तथा वर्ग संघर्ष तेज़ हो रहा है। संसारव्यापी आर्थिक एवं राजनीतिक संकट के परिणाम-स्वरूप सभी देशों में जो अनगिनत चिनगारियां उड़ रही हैं, हम नहीं जानते और नहीं जान सकते कि उनमें से कौन सी चिनगारी आग लगा देगी, यानी जनता को उठा खड़ा कर देगी; और इसलिए हमें अपने नये कम्युनिस्ट सिद्धान्तों की मदद से सभी क्षेत्रों में, यहां तक कि पुराने से पुराने, ज्यादा से ज्यादा जंग लगे और ऊपर से देखने में बिलकुल बेकार क्षेत्रों में भी "हलचल पैदा करने" की कोशिश करनी चाहिए। यदि हमने ऐसा नहीं किया, तो हम अपना काम पूरा न कर पायेंगे, हमारी तैयारी पूरी नहीं होगी, हम सभी हथियारों पर काबू नहीं पा सकेंगे और तब हम न तो पूंजीपति वर्ग (पहले जिसने पूंजीवादी ढंग से सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं की व्यवस्था की थी और अब जिसने उन सभी को उसी ढंग से छिन्न-भिन्न कर दिया है), पर विजय प्राप्त करने में समर्थ होंगे, और न उस विजय के बाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भावी कम्युनिस्ट पुनर्संगठन करने में ही सफल होंगे।

रूस में मज़दूर क्रान्ति के सफल होने और अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर जीतें प्राप्त करने के बाद, जिनकी पूंजीपति वर्ग और कूपमंडूक लोग कभी आशा नहीं करते थे, पूरी दुनिया बदल गयी है, और पूंजीपति वर्ग भी हर जगह बदल गया है। वह बोल्शेविज़्म के भय से आक्रांत है, क्रोध से मानो पागल हो उठा है, और इसीलिए एक ओर तो वह

घटनाचक्र में तेज़ी ला रहा है, और दूसरी ओर बोल्शेविज्म को बलपूर्वक दबाने पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर रहा है। और ऐसा करके वह अन्य कई क्षेत्रों में अपनी स्थिति को कमजोर बना रहा है। सभी उन्नत देशों में कम्युनिस्टों को अपनी कार्यनीति निर्धारित करते समय इन दोनों बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

ख़ास तौर पर अप्रैल १९१७ में, और उससे भी ज्यादा जून और जुलाई १९१७ में जब रूसी कैडेटों और केरेंस्की ने बोल्शेविकों के खिलाफ़ जोरों के साथ जेहाद छेड़ा, तो उन्होंने उसे "जरूरत से ज्यादा" तेज़ कर दिया। लाखों की संख्या में छपनेवाले पूंजीवादी अखबार हर सुर और लय में बोल्शेविकों के खिलाफ़ चीखते थे और उससे जनता को बोल्शेविज्म का मूल्यांकन करने में मदद मिलती थी; और अखबारों के अलावा, पूरा सार्वजनिक जीवन पूंजीपति वर्ग के "उत्साह" के कारण इसी तरह का हो गया था कि हर तरफ़ बोल्शेविज्म पर बहसें ही हुआ करती थीं। आजकल अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर सभी देशों के करोड़पति इस तरह की हरकतें कर रहे हैं जिसके लिए हमें उन्हें हार्दिक धन्यवाद देना चाहिए। वे भी बोल्शेविज्म के खिलाफ़ उसी उत्साह के साथ जेहाद कर रहे हैं, जिस उत्साह के साथ केरेंस्की और उसके संगी-साथी किया करते थे, और उसी तरह उसमें "अति" कर रहे हैं, और इसलिए केरेंस्की की ही तरह वे हमारी मदद कर रहे हैं। जब फ्रांसीसी पूंजीपति वर्ग बोल्शेविज्म को चुनावों का केन्द्रीय प्रश्न बनाता है और अपेक्षाकृत नरम अथवा ढुलमुल समाजवादियों पर बोल्शेविक होने का आरोप लगाता है; जब अमरीकी पूंजीपति वर्ग पूरी तरह होश-हवास खोकर हजारों-हजार लोगों को बोल्शेविज्म के सन्देह पर पकड़ लेता है, चारों ओर बदहवासी का वातावरण पैदा कर देता है और बोल्शेविक साज़िशों की कहानियां चारों तरफ़ फैलाता है; और जब दुनिया का सबसे "ठोस" पूंजीपति वर्ग, यानी अंग्रेज पूंजीपति वर्ग, अपनी सारी बुद्धि और अनुभव के बावजूद, ऐसी-ऐसी बेवकूफ़ियां करता है जो यकीन के लायक नहीं होतीं, बड़े-बड़े कोषों के साथ "बोल्शेविक विरोधी समितियां" बनाता है, बोल्शेविज्म पर विशेष साहित्य तैयार

करता है, और उसका मुक़ाबला करने के लिए अनेक वैज्ञानिकों, प्रचारकों और व्यक्तियों को नौकर रखता है—तब हमें इन सब पूंजीवादी महानुभावों को झुक कर धन्यवाद देना चाहिए। वे लोग हमारे लिए काम कर रहे हैं। जनता की बोल्शेविज्म में दिलचस्पी पैदा हो, वह उसके सिद्धान्तों को और उसके महत्व को समझे—ये लोग इस चीज़ में हमारी मदद कर रहे हैं। और वे दूसरी कोई चीज कर भी नहीं सकते, क्योंकि बोल्शेविज्म को कुचल देने में, उसे "अनदेखा करने" में वे असफल साबित हो चुके हैं।

परन्तु साथ ही, पूंजीपति वर्ग बोल्शेविज्म का केवल एक पहलू देखता है; यानी उसे बोल्शेविज्म में केवल विद्रोह, हिंसा, आतंक ही नज़र आता है। इसलिए वह विशेष रूप से इस क्षेत्र में उसका मुक़ाबला और प्रतिरोध करने की तैयारी करता है। यह सम्भव है कि कहीं-कहीं, कुछ देशों में, और थोड़े समय के लिए वह इसमें कामयाब हो जाय। ऐसी सम्भावना के लिए हमें तैयार रहना चाहिए। यदि वह कामयाब हो जाता है तो हमारे लिए कोई बहुत भयानक बात नहीं हो जायगी। कम्युनिज्म तो सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से "फूटता" है। उसकी शाखाएं और टहनियां तो सही माने में हर जगह दिखाई देती हैं। यह ऐसा "बीमारी का कीड़ा" है (हम पूंजीपति वर्ग और पूंजीवादी पुलिस का वह रूपक प्रयोग कर रहे हैं जो उन्हें सबसे अधिक "प्रिय" है) जो सारे शरीर में फैल गया है और उसकी नस-नस में धुस गया है। यदि एक नस को "बांधने" की विशेष कोशिश की जाती है तो यह "कीड़ा" दूसरी नस में धुस जाता है और इस बार ऐसी नस को धर पकड़ता है जिसका कभी किसी को खयाल भी न था। जीवन का तकाज़ा पूरा होकर रहेगा। पूंजीपति वर्ग पागलों की तरह प्रलाप करता है, क्रोध में होश-हवास खो देता है, हरेक हद पार कर जाता है, बेवक़ूफ़ियां करता है, बोल्शेविकों से पेशगी प्रतिशोध लेता है, तथा (हिन्दुस्तान, हंगरी, जर्मनी, आदि में) और भी सैकड़ों, हजारों, लाखों बोल्शेविकों को—पुराने बोल्शेविकों को और आगे बनने वाले बोल्शेविकों को—क़त्ल करने की कोशिश करता है। उसे ऐसा

करने दो! ऐसा करके पूंजीपति वर्ग उन वर्गों की तरह पेश आ रहा है, जिनके लिए इतिहास ने मौत का हुक्म सुना दिया है। कम्युनिस्टों को जानना चाहिए कि भविष्य हर हालत में उनका है; और इसलिए हम महान क्रान्तिकारी संघर्ष में बेमिसाल निष्ठा, साहस और शौर्य का परिचय देने के साथ-साथ पूंजीपति वर्ग के पागल प्रलापों का बहुत शांत दिल से और बहुत धैर्य के साथ मूल्यांकन कर सकते हैं (और हमें यह करना चाहिए)। रूसी क्रान्ति की १६०५ में निर्मम हार हुई। रूसी बोल्शेविकों की जुलाई १६१७ में हार हुई। जर्मनी में पूंजीपति वर्ग तथा बादशाह के समर्थक जनरैलों से मिलकर काम करनेवाले श्चाइडेमान और नोस्क के धूर्ततापूर्ण उकसावे में आकर और उनके चालाकी से भरे हथकंडों में फंस कर १,५००० कम्युनिस्ट मारे गये। फिनलैंड और हंगरी में आज भी श्वेत आतंक का दौर-दौरा है। परन्तु इन सभी जगहों में, इन सभी देशों में कम्युनिज्म बढ़ रहा है, तप कर इस्पात बन रहा है; उसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि दमन और अत्याचार से वे कमजोर नहीं होतीं, क्षीण नहीं होतीं, बल्कि और बलवान और पुष्ट होती हैं। सिर्फ एक चीज की कमी है। उस कमी को दूर करना और भी विश्वास तथा दृढ़ता के साथ क्रान्ति की ओर बढ़ने के लिए आवश्यक है। तमाम देशों के सभी कम्युनिस्टों को अभी यह अच्छी तरह समझना और हृदयंगम करना बाकी है कि उन्हें अपनी कार्यनीति में हद दर्जे के लचकीलेपन का परिचय देना आवश्यक है। कम्युनिस्ट आन्दोलन शानदार ढंग से आगे बढ़ रहा है, खास कर उन्नत देशों में; परन्तु अभी उसे अपने में यह समझ पैदा करना और उसे व्यवहार में लागू करना बाकी है।

काट्स्की, ओटो बेयर, आदि जैसे समाजवाद के भक्तों का, बड़े पंडित मार्क्सवादियों का, दूसरी इन्टरनेशनल के इतने बड़े-बड़े नेताओं का जो हाल हुआ, उससे सबक लिया जा सकता है (और लेना चाहिए)। ये लोग लचकीली कार्यनीति की आवश्यकता को अच्छी तरह समझते थे। मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद उन्होंने खुद सीखा और दूसरों को सिखाया था (इस सम्बंध में उन्होंने जो काम किया है, वह सदा समाजवादी साहित्य के लिए एक मूल्यवान देन रहेगा)। परन्तु इस द्वन्द्ववाद को लागू

करने में उन्होंने बहुत बड़ा ग़लती की; या दूसरे शब्दों में वे व्यवहार में इतने अ-द्वन्द्ववादी सिद्ध हुए और रूपों में तेज़ी से होनेवाले परिवर्तनों को और पुराने रूपों द्वारा तेजी से नये सार-तत्व के ग्रहण किये जाने की क्रिया को समझने में वे इतने असफल हुए कि उनका अंजाम भी हिन्डमैन, गुएज्दे और प्लेखानोव के अंजाम से बहुत अच्छा नहीं हुआ है।

उनके दिवालियेपन का मुख्य कारण यह था कि उन्हें मज़दूर आन्दोलन तथा समाजवाद की प्रगति के एक विशेष रूप ने "मोहित" कर लिया था। वे इस रूप का एकांगीपन बिलकुल भूल गये थे। वस्तु-स्थिति के कारण उस रूप को तेजी से त्यागना लाज़िमी हो गया था, पर उन्हें यह बात देखने में भी डर लगता था; और वे रोजमर्रा के, साधारण, सरल, और पहली नज़र में निर्विवाद रूप से सच *मालूम* पड़नेवाले ऐसे सत्य दुहराते रहते थे, जैसे : "तीन दो से ज्यादा है।" परन्तु राजनीति अंक-गणित से अधिक बीज-गणित से मिलती है, और साधारण गणित से कहीं अधिक वह उच्च गणित से मिलती है। वास्तविकता यह है कि समाजवादी आन्दोलन के पुराने सभी रूपों ने एक नया सार-तत्व प्राप्त कर लिया है, और इसलिए सभी संख्याओं के सामने एक नया चिन्ह, "नफ़ी" का चिन्ह लग गया है; परन्तु हमारे ये अफ़लातून हैं कि अपने को और दूसरों को कट्टरता के साथ यही समझाने की कोशिश करते थे (और अब भी करते हैं) कि "नफ़ी तीन" "नफ़ी दो" से ज्यादा है!

हमें इस बात का खयाल रखना होगा कि कम्युनिस्ट यही ग़लती कहीं उल्टी तरफ़ से न करने लग जायें। हमें खयाल रखना चाहिए कि "उग्रवादी" कम्युनिस्टों ने उल्टी तरफ़ से जो यही ग़लती की है, उसे जल्द से जल्द ठीक कर लिया जाय, उस पर जल्द से जल्द और कम से कम नुक़सान के साथ क़ाबू पा लिया जाय। दक्षिण-पंथी कठ-मुल्लापन ही ग़लत नहीं होता, वामपंथी अथवा उग्रवादी कठमुल्लापन भी ग़लत होता है। ज़ाहिर है कि कम्युनिज्म में वामपंथी कठमुल्लेपन की ग़लती इस वक्त दक्षिण-पंथी कठमुल्लेपन (अर्थात सामाजिक-

देशाहंकार और काट्स्कीवाद) की ग़लती से हज़ार-गुनी कम ख़तरनाक है; पर उसका कारण तो आख़िर केवल यही है कि उग्रवादी कम्युनिज़्म अभी एक बहुत कम-उम्र धारा है; अभी उसका जन्म ही हो रहा है। केवल यही कारण है कि कुछ परिस्थितियों में इस मर्ज़ का जल्दी इलाज किया जा सकता है; और हमें ज़्यादा से ज़्यादा मुस्तैदी के साथ उसके इलाज में लग जाना चाहिए।

पुराने रूप खिंचते-खिंचते फूट गये हैं, क्योंकि उनका नया सार-तत्व—जो मज़दूर-विरोधी एवं प्रतिक्रियावादी सार-तत्व था—बहुत अधिक विकास को प्राप्त हो गया था। अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिज़्म के विकास के दृष्टिकोण से आज हमारे काम का सार-तत्व (सोवियत सत्ता और मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व) इतना सशक्त, टिकाऊ और बलवान हो गया है कि वह नये और पुराने प्रत्येक रूप में प्रकट हो सकता है और उसे होना चाहिए, और वह सभी रूपों को, न सिर्फ़ नये बल्कि पुराने रूपों को भी, नया जीवन दे सकता है, उन पर विजय प्राप्त कर सकता है और उन पर क़ाबू पा सकता है; और यह उसे करना चाहिए। पुराने रूपों पर अगर वह क़ाबू पाता है तो उनसे पटरी बैठाने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि नये और पुराने, सभी तरह के और हर प्रकार के रूपों को कम्युनिज़्म की पूर्ण, अन्तिम, निर्णायक और अटल विजय प्राप्त करने का अस्त्र बनाया जा सके।

कम्युनिस्टों को इस बात की हर मुमकिन कोशिश करनी चाहिए कि मज़दूर आन्दोलन, और आम तौर पर समाज का विकास, सबसे सीधी और जल्दी पहुँचनेवाली सड़क से होता हुआ सोवियत सत्ता और मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व की संसारव्यापी विजय की ओर आगे बढ़े। यह एक निर्विवाद सत्य है। परन्तु एक छोटा सा क़दम और आगे बढ़ आइये—भले ही वह उसी दिशा में बढ़ा क़दम मालूम होता हो—और सत्य असत्य बन जायेगा। हमें बस इतना भर कहने की ज़रूरत है, और जैसा कि जर्मनी और ब्रिटेन के उग्रवादी कम्युनिस्ट कहते हैं, कि हम सिर्फ़ एक सड़क को सही समझते हैं, और वह है सीधी सड़क, और हम कहीं भी रास्ता बदलने, दाँव-पेंच चलाने, या समझौते करने

की इजाज़त नहीं देंगे—और यह कहना एक इतनी बड़ी गलती होगी, जिससे कम्युनिज़्म का सख्त नुक़सान हो सकता है; आंशिक रूप से हो भी चुका है, और इस वक्त भी हो रहा है। दक्षिण-पंथी कठमुल्लापन केवल पुराने रूपों को मानता था; वह अपनी बात पर अड़ा रहा और दिवालिया हो गया, क्योंकि उसने नये सार-तत्व को नहीं देखा। वामपंथी अथवा उग्रवादी कठमुल्लापन कुछ पुराने रूपों को किसी भी हालत में मानने को तैयार नहीं है। वह नहीं देखता कि नया सार-तत्व सभी रूपों में से अपना रास्ता बना रहा है, और इसलिए कम्युनिस्टों की हैसियत से हमारा कर्तव्य है कि हम सभी रूपों पर अधिकार प्राप्त करें, यह सीखें कि किस प्रकार जल्द से जल्द एक रूप के साथ दूसरा रूप मिलाया जाता है, एक रूप के स्थान पर दूसरा रूप लाया जाता है; और जो परिवर्तन न तो हमारे वर्ग ने पैदा किये हैं और न हमारी कोशिशों के फलस्वरूप हुए हैं, उनके अनुसार अपनी कार्यनीति को कैसे बदला जाता है।

संसारव्यापी साम्राज्यवादी युद्ध की विभीषिकाओं, यातनाओं और विकृतियों ने, और उससे उत्पन्न निराशाजनक परिस्थिति ने, विश्व क्रान्ति को बहुत, बहुत ही आगे बढ़ा दिया है और उसे बहुत तेज़ कर दिया है। विश्व क्रान्ति इतनी शानदार तेजी से विस्तार और गहराई में बढ़ रही है, वह इतने रंग-बिरंगे और सदा बदलते रूपों में प्रकट हो रही है, और उससे इतने उपयोगी ढंग से हर प्रकार के कठमुल्लेपन का व्यवहार में खंडन होता जा रहा है, जिससे यह आशा करने का प्रत्येक आधार हमारे पास मौजूद है कि अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन का पिंड "उग्रवादी" कम्युनिज़्म के बचकाना मर्ज़ से जल्द ही और पूरी तरह छूट जायेगा।

२७ अप्रैल, १९२०

प रि शि ष्ट

हमारे देश को सारे संसार के साम्राज्यवादियों ने मज़दूर क्रान्ति का बदला लेने के उद्देश्य से लूटा है, और इस समय भी वे अपने मज़दूरों से किये गये तमाम वादों को भुलाकर बराबर उसे लूट रहे हैं। इसलिए, इससे पहले कि हमारे देश के प्रकाशन-गृह मेरी पुस्तिका को प्रकाशित कर सकें, विदेश से कुछ और मसाला मेरे पास जमा हो गया है। सामयिक प्रसंगों पर लिखनेवाले एक लेखक की जल्दी में लिखी गयी टिप्पणियों से अधिक कुछ न देने का दावा करते हुए, मैं यहां अपनी पुस्तिका में दो-चार बातों की और चर्चा करूंगा।

: एक :

जर्मन कम्युनिस्टों में फूट

जर्मनी के कम्युनिस्टों में फूट अब एक मानी हुई बात हो गयी है। "उग्रवादियों" ने, अथवा "सिद्धान्ततः विरोध" करनेवालों ने "कम्युनिस्ट पार्टी" से अलग एक "कम्युनिस्ट मज़दूर पार्टी" बना ली है। इटली में भी शायद फूट होने को ही है—शायद मैं इसलिए कहता हूं कि वहां के उग्रवादी पत्र इल सोवियत के मैंने सिर्फ़ दो नये अंक (अंक ७ और ८) देखे हैं, जिनमें फूट की संभावना और आवश्यकता की खुलेआम चर्चा की गयी है और इस बात का भी ज़िक्र किया गया है कि "बहिष्कारवादी" गुट (अर्थात पार्लामेंट में भाग लेने के

विरोधियों का गुट) की, जो अभी तक भी इटली की समाजवादी पार्टी का ही एक हिस्सा है, एक अलग कांग्रेस होनेवाली है।

ऐसे कारण हैं जिनसे भय लगता है कि जैसे "केन्द्रवादियों" के साथ (या काट्स्कीवादियों, लौंगुएवादियों, "स्वतंत्र" दलवालों, आदि के साथ) होनेवाली फूट अन्तरराष्ट्रीय पैमाने की घटना बन गयी है, वैसे ही "उग्रवादियों" या पार्लामेंट के विरोधियों के साथ (जो आंशिक रूप में राजनीति के, राजनीतिक पार्टी बनाने के, और ट्रेड यूनियनों में काम करने के भी विरोधी हैं) होनेवाली यह फूट भी एक अन्तरराष्ट्रीय घटना बन जायगी। यही होना है तो हो! हर हालत में उलझाव से फूट बेहतर होती है। उलझाव पार्टी के सैद्धान्तिक, विचारात्मक एवं क्रान्तिकारी विकास को रोक देता है, पार्टी को परिपक्व नहीं होने देता और उसे वह वैसा सुसंगत, सच्चे मानो में संगठित अमली काम करने से रोकता है, जो सही माने में मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व के लिए रास्ता तैयार करता है।

"उग्रवादियों" को राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर अपने को व्यवहार की कसौटी पर परखने दो! सख्ती के साथ केन्द्रित लौह-अनुशासनवाली पार्टी के बिना, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक काम के प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक शाखा, और प्रत्येक रूप पर अधिकार प्राप्त किये बिना—इन लोगों को ज़रा मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व की तैयारी (और फिर स्थापना) की कोशिश करके तो देख लेने दो! व्यावहारिक अनुभव शीघ्र ही उन्हें बुद्धिमान बना देगा।

परन्तु, इस बात की हर मुमकिन कोशिश होनी चाहिए कि "उग्रवादियों" के साथ होनेवाली यह फूट मज़दूर आन्दोलन के उन सभी लोगों को, जो सोवियत सरकार तथा मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व में सच्चे दिल से और ईमानदारी से विश्वास करते हैं, एक पार्टी में मिलाने के काम में—जो निकट भविष्य में अवश्यम्भावी है—रुकावट न डालने पाये, या कम से कम रुकावट डाले। रूस के बोल्शेविकों का यह बड़ा सौभाग्य था कि मज़दूर अधिनायकत्व क़ायम करने के लिए सीधा जन-संघर्ष शुरू करने के बहुत पहले ही उन्हें मेन्शेविकों (अर्थात

अवसरवादियों और "केन्द्रवादियों") और उग्रवादियों, दोनों के खिलाफ बाक़ायदा और डटकर संघर्ष चलाने के लिए पन्द्रह वर्ष का अवसर मिल गया था। योरप और अमरीका में यही काम अब बहुत जल्दबाज़ी में करना है। हो सकता है कि कुछ व्यक्ति, ख़ासकर नेता बनने के असफल दावेदारों में से कुछ लोग (यदि उनमें मज़दूर अनुशासन की कमी है और वे "अपने साथ ईमानदार नहीं हैं") बहुत दिनों तक अपनी ग़लतियों पर अड़े रहें। लेकिन जब परिस्थिति परिपक्व हो जायगी, तब *आम मज़दूर बड़ी आसानी से और बड़ी जल्दी से* खुद अपने को एक कर लेंगे और सभी ईमानदार कम्युनिस्टों को एक ऐसी संयुक्त पार्टी में मिला देंगे, जो सोवियत व्यवस्था और मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना करने में समर्थ होगी। *

---

* जहां तक "उग्रवादी" कम्युनिस्टों या पार्लामेंट के विरोधियों का आम कम्युनिस्टों से भविष्य में कभी मिलने का सवाल है, मैं चन्द बातें और कहना चाहता हूँ। जर्मनी के "उग्रवादी" कम्युनिस्टों के और आम कम्युनिस्टों के समाचार पत्रों को जहां तक भी मैं देख पाया हूँ, मुझे ऐसा लगता है कि "उग्रवादी" कम्युनिस्ट आम कम्युनिस्टों से ज़्यादा अच्छे ढंग से जनता के बीच प्रचार करते हैं। कुछ इसी तरह की बात मैंने बोल्शेविक पार्टी के इतिहास में भी बार-बार होते हुए देखी है, यद्यपि वहां यह छोटे पैमाने पर और कुछ स्थानीय संगठनों में ही दिखाई देती थी, न कि देशव्यापी पैमाने पर। उदाहरण के लिए, १६०७-०८ में कुछ मौक़ों पर और कुछ जगहों में, "उग्रवादी" बोल्शेविकों ने जनता के बीच हम से अधिक सफल प्रचार किया। इसका एक कारण यह हो सकता है कि एक क्रान्तिकारी समय में, या ऐसे समय में जब क्रान्तिकारी घटनाओं की याद अभी ताज़ा है, केवल "नकारात्मक" कार्य-नीति को लेकर जनता के पास जाना ज़्यादा आसान होता है। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि ऐसी कार्य-नीति सही होती है। किसी भी हालत में, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि यदि कोई कम्युनिस्ट पार्टी सचमुच में क्रान्तिकारी वर्ग का, मजदूर वर्ग का सच्चा अग्रदल या आगे बढ़ा हुआ दस्ता बनना चाहती है, और साथ ही आम जनता का—न सिर्फ़

: दो :

जर्मनी में कम्युनिस्ट और स्वतंत्र दलवाले

मैंने इस पुस्तिका में यह मत प्रकट किया है कि कम्युनिस्टों और स्वतंत्र दल के वामपक्ष के बीच समझौता कराना कम्युनिज्म के लिए आवश्यक और लाभदायक चीज़ है, परन्तु यह काम आसानी से नहीं हो सकेगा। उसके बाद जो अखबार मुझे मिले हैं, उनसे इन दोनों बातों के बारे में मेरा मत और पक्का हो गया है। जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के मुखपत्र लाल फरहरा (डी रोट फ़ाहन के २६ मार्च १६२०) के अंक ३२ में कैप्प-लुट्टविट्ज़ सैनिक षड्यंत्र[1] (विद्रोह की दुस्साहसपूर्ण कोशिश या साज़िश के बारे में) और "समाजवादी सरकार" के बारे में इस केन्द्रीय समिति का एक बयान प्रकाशित हुआ है। यह बयान जिस बुनियादी बात को लेकर चलता है, और उससे जो अमली नतीजा निकलता है, वे बिलकुल सही हैं। बुनियादी बात यह है कि इस समय मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व का कोई "वास्तविक आधार" नहीं है, क्योंकि "शहरी मज़दूरों का बहुमत" स्वतंत्र दलवालों के साथ है। इससे निकाले गये निष्कर्ष के रूप में वचन दिया गया है कि "यदि पूंजीवादी पार्टियों को अलग करके एक समाजवादी सरकार बनायी गयी", तो कम्युनिस्ट पार्टी "वफ़ादार विरोधी पक्ष" की तरह काम करेगी (यानी इस सरकार को "जबर्दस्ती उलटने" की तैयारी नहीं करेगी)।

निस्संदेह, यह कार्यनीति मुख्यतः सही है। और यहां बात को पेश करने के ढंग में की गयी छोटी-मोटी ग़लतियों की चर्चा करना तो

मज़दूर जनता, बल्कि ग़ैर-मज़दूर मेहनतकश एवं शोषित जनता का—नेतृत्व करना भी सीखना चाहती है, तो उसे जानना चाहिए कि प्रचार-कार्य कैसे किया जाता है, संगठन कैसे किया जाता है, और शहरों, कारखानों और देहात की जनता के बीच सबसे सहज, सरल, स्पष्ट, साफ़, और पूर्ण प्रचार कैसे किया जाता है।

अनावश्यक है, पर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि सामाजिक ग़द्दारों की सरकार को (कम्युनिस्ट पार्टी के एक अधिकृत बयान में) "समाजवादी" सरकार नहीं कहा जा सकता। इसी तरह, जब श्वाइडेमानों की पार्टी और श्रीमान काट्स्किर्यो और क्रिस्पियनों, आदि की पार्टी—दोनों ही—निम्न-पूंजीवादी जनवादी पार्टियां हैं, तब "पूंजीवादी पार्टियों को" अलग रखने की चर्चा नहीं की जा सकती। साथ ही इस तरह की बातें लिखना भी सर्वथा अनुचित है, जिस तरह की बातें बयान के चौथे पैराग्राफ में लिखी गयी हैं :

> "...मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व के विकास के दृष्टिकोण से आम मज़दूर जनता को कम्युनिज्म के और भी नजदीक लाने के लिए ऐसी हालत का होना अत्यधिक महत्व की बात है—जिसमें राजनीतिक स्वतंत्रता का निर्द्वन्द्व होकर उपयोग किया जा सके और जिसमें पूंजीवादी जनतंत्र, पूंजी के अधिनायकत्व के रूप में न प्रकट हो सके...।"

ऐसी हालत का पैदा होना असम्भव है। निम्न-पूंजीवादी नेता—जर्मनी के हेंडरसन (यानी श्वाइडेमान, आदि) और स्नोडन (यानी क्रिस्पियन, आदि) पूंजीवादी जनतंत्र की सीमाओं के बाहर कभी नहीं जाते और न जा सकते हैं। और पूंजीवादी जनतंत्र पूंजी के अधिनायकत्व के सिवा और कुछ नहीं होता। कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति जिन व्यावहारिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की कोशिश कर रही है—और सही कोशिश कर रही है—उनको प्राप्त करने के लिए ऐसी बातें लिखने की कोई आवश्यकता नहीं थी, जो सिद्धान्ततः ग़लत और राजनीतिक दृष्टि से हानिकारक हैं। यहां (यदि पार्लामेंट के तौर-तरीक़ों का खयाल रखना जरूरी था तो) इतना कह देना काफ़ी होता कि जब तक शहरी मज़दूरों का बहुमत स्वतंत्र दलवालों के साथ है, तब तक इन मजदूरों को "अपनी" सरकार के अनुभव से गुजरने और अपने अन्तिम कूपमंडूक जनवादी भ्रमों से (जो "पूंजीवादी" भ्रम भी हैं) मुक्त होने के रास्ते में हम कम्युनिस्ट कोई अड़चन न डालेंगे। इतना आधार समझौते के लिए काफ़ी होता है, और ऐसे

समझौते की सचमुच आवश्यकता है। समझौते की शक्ल यही होनी चाहिए कि हम इस सरकार को, जिसे शहरी मजदूरों के बहुमत का विश्वास प्राप्त है, जबर्दस्ती उलटने की कुछ समय तक कोई कोशिश न करेंगे। परन्तु जनता के बीच रोजमर्रा के प्रचार में, जिसमें पार्लामेंट के तौर-तरीक़ों का खयाल रखना जरूरी नहीं होता, हम साथ-साथ यह भी कहते जायेंगे : श्चाइडेमान जैसे बदमाशों और काट्स्की और क्रिस्पियन जैसे पाखंडियों को अपने कामों से ही यह बात साफ़ करने दो कि वे स्वयं किस तरह बेवकूफ़ बने हैं, और खुद किस प्रकार मज़दूरों को बेवकूफ़ बना रहे हैं; उनकी यह "साफ़" सरकार "सबसे साफ़" काम यह करेगी कि वह खुद समाजवाद, सामाजिक जनवाद और सामाजिक ग़द्दारी के अन्य रूपों के कूड़े-करकट को "साफ़ कर देगी।"

जर्मनी की कौर्निलोव घटना यानी कैप्प-लुट्टविट्ज़ विद्रोह* के समय एक बार फिर जर्मनी की स्वतंत्र सामाजिक जनवादी पार्टी के वर्तमान नेताओं का असली स्वरूप प्रकट हो गया है (इन्हीं के बारे में बिलकुल ग़लत यह कहा जाता है कि उनका सारा असर खतम हो गया है, जब कि वास्तव में उनसे मज़दूर वर्ग को, हंगरी के उन सामाजिक-जनवादियों से भी ज्यादा खतरा है जो अपने को कम्युनिस्ट कहते थे और जिन्होंने मज़दूर वर्ग के अधिनायकत्व का "समर्थन" करने का वचन दिया था)। दो संक्षिप्त लेखों के रूप में छोटी, पर बहुत अच्छी मिसाल हमें मिल गयी है : एक लेख कार्ल काट्स्की का "निर्णायक घड़ियां" शीर्षक से है, जो (स्वतंत्र दल के मुखपत्र) स्वतंत्रता के ३० मार्च १६२० के अंक में प्रकाशित हुआ है; और दूसरा लेख आर्थर क्रिस्पियन का "राजनीतिक परिस्थिति के विषय में" शीर्षक से (इसी पत्र के १४ अप्रैल १६२० के अंक में) है। इन महानुभावों को

* यहां चलते-चलते यह भी बता दिया जाय कि आस्ट्रिया की कम्युनिस्ट पार्टी के उत्तम मुखपत्र लाल फरहरा के २८ और ३० मार्च १६२० के अंकों में "जर्मन क्रान्ति की एक नयी मंजिल" शीर्षक लेख में इस घटना की चर्चा बहुत ही स्पष्ट, संक्षिप्त, सही और मार्क्सवादी ढंग से की गयी है।

क्रान्तिकारियों की तरह सोचना और तर्क करना बिलकुल नहीं आता है। वे तो सठिआयी बुढ़िया की तरह रोने-बिलखनेवाले कूपमंडूक जनवादी हैं, जो उस समय मज़दूर वर्ग के लिए हजार-गुना ज्यादा खतरनाक बन जाते हैं, जब वे सोवियत सरकार तथा मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व के समर्थक होने का दावा करने लगते हैं। कारण यह है कि जब कभी कोई कठिन और संकटमय परिस्थिति पैदा होती है तो यह निश्चित समझिए कि ये लोग जरूर ग़द्दारी करेंगे...पर "बड़ी ईमानदारी के साथ" मन में यही समझेंगे कि वे मज़दूर वर्ग की मदद कर रहे हैं! हंगरी के सामाजिक जनवादियों की ही याद कीजिए। उन्होंने अपना नाम "कम्युनिस्ट" रख लिया था, पर जब अपनी कायरता और घुटना-टेकू प्रवृत्ति के कारण उन्हें ऐसा लगा कि हंगरी में सोवियत व्यवस्था के क़ायम रहने की कोई आशा नहीं रह गयी है, तो वे गिड़गिड़ाते, रोते-बिलखते, मित्र राष्ट्रों के पूंजीपतियों और मित्र राष्ट्रों के जल्लादों के सामने पहुँच गये। उस समय क्या उन महानुभावों का भी खयाल यही नहीं था कि वे मज़दूर वर्ग की मदद कर रहे हैं?

: तीन :

इटली में तुराती और उसके संगी-साथी

इटली की समाजवादी पार्टी ने इस प्रकार के सदस्यों को, और यहां तक कि पार्लामेंट के मेम्बरों के ऐसे पूरे दल को अपने अन्दर रहने देकर जो ग़लती की है, उसके बारे में मैंने पुस्तिका में जो कुछ कहा है, वह इटालवी पत्र इल सोवियत के उपरोक्त अंकों से पूरी तरह पुष्ट हो जाता है। लेकिन उसे और भी पुष्ट कर दिया है एक विदेशी पर्यवेक्षक ने। हमारा मतलब इंगलैंड के पूंजीवादी-उदारपंथी पत्र मैंचेस्टर गार्जियन के रोम संवाददाता से है। तुराती से उसकी एक भेंट का वर्णन इस पत्र के १२ मार्च १९२० के अंक में छपा है। संवाददाता लिखता है :

" सिन्योर तुराती का मत है कि इटली में क्रान्तिकारी खतरा इतना बड़ा नहीं है कि कोई चिन्ता की बात हो। चरमपंथी केवल जनता को जाग्रत और उत्तेजित रखने के लिए सोवियत सिद्धान्तों की आग पर पंखा झल रहे हैं। परन्तु असल में ये सिद्धान्त परम्परा से चली आयी कुछ धारणाएं मात्र हैं, ऐसे अपरिपक्व कार्यक्रम हैं जो व्यवहार में उपयोग के योग्य नहीं हैं। उनका केवल यही परिणाम होगा कि मज़दूर वर्ग को सदा बड़ी आशाएं बनी रहेंगी। जो लोग इन सिद्धान्तों के सब्जबाग दिखा कर मज़दूरों की आंखों को चकाचौंध करते हैं, उनको भी रोजमर्रा की किसी न किसी, अक्सर बहुत छोटी आर्थिक सुविधा के लिए लड़ाई चलानी पड़ती है ताकि वह घड़ी टली रहे जब कि मज़दूरों के भ्रम दूर हो जायेंगे और उनकी अपनी प्रिय कल्पना में उनका विश्वास जाता रहेगा। यही कारण है कि छोटी-बड़ी हर तरह की हड़तालों का लम्बा तांता लगा रहता है। हर प्रकार के बहाने को लेकर हड़ताल की जाती है; यहां तक कि हाल में डाक और रेल के विभागों में भी हड़ताल बोल दी गयी है। इन हालतों से देश की बिगड़ी हुई हालत और खराब होती है। देश एड्रियाटिक समस्या से पैदा होनेवाली कठिनाइयों से परेशान है, विदेशी कर्ज और बनावटी ढंग से फुलायी हुई कागजी मुद्रा के बोझ से दबा जा रहा है, और फिर भी काम का अनुशासन सीखने की वह जरूरत महसूस नहीं करता, यद्यपि उसके बिना न तो व्यवस्था क़ायम हो सकती है, और न समृद्धि आ सकती है...।"

दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि इस संवाददाता ने सच्ची बात कह डाली है, जिसे स्वयं तुराती और इटली में उसके पूंजीवादी हिमायती, उसके संगी-साथी, और उसे प्रेरणा देनेवाले शायद अभी तक छिपाया करते थे। सच्ची बात यह है कि सर्वश्री तुराती, त्रेवेज़, मोदिग्लियानी, दुगोनी और उनके संगी-साथियों के विचार और राजनीतिक काम सचमुच बिलकुल वैसे ही हैं जैसे इस अंग्रेज़ संवाददाता ने बताये हैं। और यह है सीधी सामाजिक ग़द्दारी। मज़दूरों में—जो पूंजीपतियों की थैलियां भरने के लिए कमर-तोड़ काम करनेवाले ग़ुलाम

मजूर हैं—व्यवस्था और अनुशासन क़ायम रखने की उनकी वकालत को तो ज़रा देखिए! और हम रूसी लोग ऐसे मेन्शेविक भाषणों से कितने परिचित मालूम पड़ते हैं! यह कितनी मूल्यवान बात है कि इन हज़रतों को भी मानना पड़ा है कि जनता सोवियत सरकार चाहती है! और अपने-आप फैलनेवाली हड़तालों की क्रान्तिकारी भूमिका को न समझना—यह बात भी कितनी बड़ी मूर्खता और पूंजीवादी मनोवृत्ति की परिचायक है! सचमुच इंगलैंड के पूंजीवादी उदारपंथी पत्र के इस संवाददाता ने श्रीमान तुराती और उनके संगी-साथियों का असली चेहरा हमें दिखा दिया है और कॉमरेड बोर्दिगा और उनके इल सोवियत के सहयोगियों की इस मांग को बिलकुल सही साबित कर दिया है कि यदि इटली की समाजवादी पार्टी सही माने में तीसरी इन्टरनेशनल के साथ है, तो उसे श्री तुराती और उनके संगी-साथियों को अपने बीच से निकाल बाहर करना चाहिए और नाम और काम दोनों से कम्युनिस्ट पार्टी बन जाना चाहिए।

: चार :

सही बातों से ग़लत नतीजे

परन्तु श्री तुराती और उनके संगी-साथियों की इस सही आलोचना से कॉमरेड बोर्दिगा और उनके "उग्रवादी" मित्र यह नतीजा निकालते हैं कि पार्लामेंट में भाग लेना आम तौर पर ग़लत है। इस मत के समर्थन में इटली के "उग्रवादी" कोई रत्ती बराबर गम्भीर तर्क नहीं दे पाते। पूंजीवादी पार्लामेंटों के क्रान्तिकारी और कम्युनिस्ट इस्तेमाल के, जिससे निस्संदेह रूप से मज़दूर क्रान्ति की तैयारी में बड़ी मदद मिली है, अनेक अन्तरराष्ट्रीय उदाहरण मौजूद हैं। पर ये लोग उन्हें जानते ही नहीं (या जानकर भी भुला देने की कोशिश करते हैं)। यह बात इन लोगों की समझ में आती ही नहीं कि पार्लामेंट को इस्तेमाल करने का एक "नया" ढंग भी है। बस वे "पुराने",

ग़ैर-बोल्शेविक ढंग को ही चीख-चीख कर कोसते रहते हैं और ऐसा करते हुए कभी नहीं थकते।

यही उनकी बुनियादी ग़लती है। कम्युनिज्म को केवल पार्लामेंटी क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि कार्य के सभी क्षेत्रों में सैद्धान्तिक रूप से कोई ऐसी नयी बात पैदा करनी चाहिए (और बहुत दिनों तक, लगातार, और डट कर कोशिश किये बिना यह बात नहीं पैदा की जा सकती), जो दूसरी इन्टरनेशनल की परम्पराओं को बिलकुल त्याग देने (और साथ ही उसकी अच्छी बातों को क़ायम रखने और आगे बढ़ाने) की सूचक हो।

मिसाल के लिए, पत्रकार का काम लीजिए। अख़बारों, पुस्तिकाओं और परचों के ज़रिए प्रचार, आन्दोलन और संगठन का आवश्यक कार्य होता है। यदि कोई थोड़ा सा भी सभ्य देश है, तो उसमें कोई भी जन-आन्दोलन पत्रकार-विभाग के बिना अपना काम नहीं चला सकता। और आप "नेताओं" को चाहे जितनी गालियां दें, नेताओं के प्रभाव से जनता को अपवित्र न होने देने की चाहे जितनी प्रतिज्ञाएं करें, पर इस काम के लिए आपको इस्तेमाल ऐसे लोगों को ही करना पड़ेगा जो पूंजीवादी-बुद्धिजीवी वातावरण से आते हैं; उन्हें इस्तेमाल करने की ज़रूरत से आप किसी तरह नहीं भाग सकते। इस काम का वातावरण, जब तक पूंजीवाद क़ायम है, पूंजीवादी-जनवादी, "व्यक्तिगत सम्पत्ति" वाला वातावरण ही रहेगा; आप किसी हालत में उससे मुक्त नहीं हो सकते। हमारे देश में पूंजीपति वर्ग को उलटे हुए, और मज़दूर वर्ग को राजनीतिक सत्ता पर अधिकार किये हुए, ढाई वर्ष हो गये हैं, पर अभी तक हमारे यहां वही वातावरण है; आम (किसान, दस्तकार) वातावरण पूंजीवादी-जनवादी और व्यक्तिगत सम्पत्ति वाले सम्बंधों का वातावरण है।

पार्लामेंट का काम एक ढंग का है, पत्रकार का काम दूसरे ढंग का है। पर दोनों ढंग के कामों का सार-तत्व कम्युनिस्ट हो सकता है और उसे कम्युनिस्ट होना चाहिए—बशर्ते कि दोनों क्षेत्रों में काम करनेवाले सच्चे कम्युनिस्ट हों, मज़दूर वर्ग की जन-पार्टी के सच्चे

सदस्य हों। फिर भी, दोनों में से कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है,—और पूंजीवाद के रहते हुए तथा पूंजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन के काल में, काम का कोई भी दूसरा क्षेत्र ऐसा नहीं हो सकता—जिसमें इन कठिनाइयों और विशेष समस्याओं से बचना मुमकिन हो। यदि मज़दूर वर्ग पूंजीपति वर्ग से आनेवाले व्यक्तियों की सेवाओं का अपने उद्देश्य के लिए उपयोग करना चाहता है, यदि उसे निम्न-पूंजीवादी वातावरण की शक्ति को कम करने के लिए (और अन्त में इस वातावरण को एकदम बदल डालने के लिए) पूंजीवादी, मिथ्या बौद्धिक धारणाओं और प्रभावों पर विजय प्राप्त करना है, तो उसके लिए आवश्यक है कि वह इन कठिनाइयों पर क़ाबू पाये और इन विशेष समस्याओं को हल करे।

१६१४–१८ के युद्ध के पहले क्या हमने सभी देशों में ऐसे चरमपंथी "उग्रवादी" अराजकतावादियों, संघ-समाजवादियों, आदि के असंख्य उदाहरण नहीं देखे थे, जो पार्लामेंटों में तो पूंजीपतियों जैसा भद्दा आचरण करनेवाले समाजवादियों को गालियां देते थे, उनकी स्वार्थपरता की निन्दा करते थे, इत्यादि, इत्यादि; पर खुद पत्रकार-कला के जरिए और मजदूर-संघों (सिंडीकलों) के काम के जरिए उसी प्रकार अपना स्वार्थ-साधन करते थे और उसी प्रकार अपना पूंजीवादी भविष्य बनाते थे? यदि अकेले फ्रांस को ही लें, तो क्या जूहो और मेरहाइम की मिसालें इस बात का काफ़ी सबूत नहीं हैं?

पार्लामेंट में भाग लेने का "विरोध" करनेवालों का बचपन ठीक इसी बात में है कि वे समझते हैं कि मज़दूर आन्दोलन के अन्दर पूंजीवादी-जनवादी प्रभावों से निपटने की कठिन समस्या, इस "सरल" और "सहज" ढंग से "हल" हो जायगी। असलियत यह है कि ये लोग खुद अपनी छाया से भागते हैं, कठिनाइयों की ओर से आंखें मूंद लेते हैं, और उन्हें कोरे शब्दों के द्वारा रास्ते से हटाना चाहते हैं। शर्म और हया छोड़कर स्वार्थ-साधन करना, पार्लामेंट की सीटों को पूंजीपतियों की तरह इस्तेमाल करना, पार्लामेंट के काम को भद्दे सुधारवादी ढंग से चलाना, भोंडी निम्न-पूंजीवादी दिनचर्या में फंस जाना—ये

सब निस्सन्देह बड़ी आम और प्रचलित बातें हैं, जिन्हें पूंजीवाद हर जगह, न सिर्फ़ मजदूर आन्दोलन के बाहर बल्कि उसके अन्दर भी, पैदा करता है। परन्तु पूंजीवाद और उससे उत्पन्न होनेवाला पूंजीवादी वातावरण (जो पूंजीपति वर्ग के पतन के बाद भी बहुत धीरे-धीरे जाता है, क्योंकि किसानों के बीच से बराबर पूंजीपति पैदा होते रहते हैं) तो थोड़ा-बहुत रूप बदलकर कार्य और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पूंजीवादी स्वार्थ-परता, राष्ट्रवादी-देशाहंकार, निम्न-पूंजीवादी भोंड़ापन पैदा करता रहता है।

मेरे प्यारे बहिष्कारवादियो और पार्लामेंट-विरोधियो! तुम अपने को "बड़े भारी क्रान्तिकारी" समझते हो, पर वास्तव में तुम, मज़दूर आन्दोलन के अन्दर पाये जानेवाले पूंजीवादी प्रभावों से लड़ने की अपेक्षाकृत छोटी कठिनाइयों से भयभीत हो गये हो, और यह भूल गये हो कि तुम्हारी विजय के बाद—यानी पूंजीपति वर्ग को उलटने और मज़दूर वर्ग द्वारा राजसत्ता पर अधिकार करने के बाद—ठीक ये ही कठिनाइयां आज से कहीं ज्यादा, बेहद ज्यादा हो जायेंगी। बच्चों की तरह, तुम आज एक छोटी सी कठिनाई से भयभीत हो और यह नहीं समझते कि कल और परसों तुम्हें इन्हीं कठिनाइयों पर क़ाबू पाना सीखना होगा, और पूरी तरह सीखना होगा; और फ़र्क सिर्फ़ इतना होगा कि तब ये कठिनाइयां आज से बेहद बढ़ गयी होंगी, और तुम किसी तरह इन कठिनाइयों से बच नहीं पाओगे।

सोवियत शासन क़ायम हो जाने के बाद पूंजीवादी-बुद्धिजीवियों की और भी बड़ी संख्या तुम्हारी मजदूर पार्टी पर और हमारी मज़दूर पार्टी पर हल्ला बोलेगी। वे लोग सोवियतों में घुस जायेंगे, अदालतों में और शासन प्रबंध में घुस जायेंगे, क्योंकि पूंजीवाद ने जो मानव-सामग्री पैदा की है, उसकी सहायता के बिना कम्युनिज़्म की रचना नहीं की जा सकती। और पूंजीवादी बुद्धिजीवियों को हम निकाल नहीं सकते, नष्ट नहीं कर सकते; बल्कि हमें उनको हराना होगा, नये सांचे में ढालना पड़ेगा, उन्हें अपने में समो लेना होगा और उन्हें फिर से शिक्षित करना पड़ेगा। ठीक इसी तरह हमें मज़दूरों को भी—मज़दूर वर्ग के

अधिनायकत्व के आधार पर एक लम्बा संघर्ष चला कर—फिर से शिक्षा देनी होगी। वे भी एक झटके से, किसी अलौकिक घटना अथवा चमत्कार के फल-स्वरूप, मात्र [illegible] के फरमान से, या किसी नारे, प्रस्ताव या फ़रमान के प्रताप से, अपनी निम्न-पूंजीवादी मिथ्या धारणाओं को नहीं त्यागते, बल्कि आम तौर पर [illegible] हुए निम्न-पूंजीवादी प्रभावों के खिलाफ़ एक कठिन और लम्बे संघर्ष के दौरान में ही उनसे अपना पीछा छुड़ा पाते हैं। जिन [illegible] को आज ये पार्लामेंट-विरोधी इतने गर्व के साथ, घमंड के साथ, इतने हल्के ढंग से और इतने बचपन के ढंग से सिर्फ़ हाथ का एक इशारा करके रास्ते से हटा देना चाहते हैं, ठीक वे ही समस्याएं सोवियतों के अन्दर, सोवियत शासन प्रबंध के अन्दर, और सोवियत "वकीलों" में नया जन्म ले रही हैं (रूस ने [illegible] पूंजीवादी वकालत की प्रथा को खतम कर दिया है, और ऐसा करके एक सही काम किया है, परन्तु सोवियत "वकीलों" के रूप में [illegible] फिर से जन्म ले रही है)। सोवियत इंजीनियरों में, सोवियत अध्यापकों में, और सोवियत कारखानों के उन मज़दूरों में जिन्हें विशेष सुविधाएं मिली हुई हैं, यानी सबसे अधिक कार्य-निपुण और सबसे अधिक तनख्वा, आदि पानेवाले मज़दूरों में, हम उन सभी [illegible] को लगातार पैदा होते देखते हैं, जो पूंजीवादी पार्लामेंटवाद के [illegible] होते हैं; और हम बुराई पर हम अनेक, [illegible] ही [illegible] करके ही और मज़दूर संगठन तथा अनुशासन के [illegible] से ही काबू पा रहे हैं।

ज़ाहिर है कि पूंजीवादी वर्ग के शासन में खुद अपनी, यानी मज़दूरों की पार्टी से पूंजीवादी आदतों को निकालना हमारे लिए बहुत "कठिन" होता है। इस [illegible] नेता को पार्टी से निकालना "कठिन" होता है जो [illegible] से [illegible] काम कर रहा है, पर जिन पूंजीवादी मिथ्या धारणाओं ने [illegible] कर दिया है। पूंजीवादी [illegible] से आनेवाले उन लोगों को (जिनकी संख्या [illegible] ही बहुत [illegible] जो हमारे लिए एकदम आवश्यक होते हैं, [illegible] "कठिन" होता है। पूंजीवादी पार्लामेंट के अन्दर [illegible]

कम्युनिस्ट दल बनाना "कठिन" होता है, जो सचमुच मज़दूर वर्ग के योग्य हो। इस बात की गारंटी करना "कठिन" होता है कि पार्लामेंट के कम्युनिस्ट सदस्य पूंजीवादी सदस्यों की तरह पार्लामेंट में शतरंज का खेल नहीं नहीं खेलने लगेंगे, बल्कि जनता के बीच प्रचार, आन्दोलन और संगठन का तत्काल आवश्यक कार्य करेंगे। ये सारे काम निश्चय ही "कठिन" हैं। रूस में भी ये काम कठिन थे और पश्चिमी योरप तथा अमरीका में तो वे उससे कहीं ज्यादा कठिन होंगे, क्योंकि वहां का पूंजीपति वर्ग रूस से कहीं ज्यादा मजबूत है, और पूंजीवादी-जनवादी परम्पराएं आदि भी रूस से अधिक बलवान हैं।

फिर भी, यदि हम इन कठिनाइयों की तुलना ठीक इसी प्रकार की उन समस्याओं से करें, जिन्हें मज़दूर वर्ग को—मज़दूर क्रान्ति के दौरान में और मजदूर वर्ग द्वारा सत्ता पर अधिकार करने के बाद—लाजिमी तौर पर और हर हालत में विजय प्राप्त करने के लिए हल करना पड़ेगा, तो ये "कठिनाइयां" बच्चों का खेल मालूम पड़ती हैं। मजदूर अधिनायकत्व के क़ायम हो जाने के बाद हमें करोड़ों किसानों और छोटे मालिकों को, लाखों दफ्तरों के बाबुओं, कर्मचारियों और पूंजीवादी बुद्धिजीवियों को फिर से शिक्षा देनी है; इन सबों को मज़दूर राज्य तथा मजदूर नेतृत्व की मातहती में लाना है, उनकी पूंजीवादी आदतों और परम्पराओं को हराना है। सही माने में ये विराट समस्याएं हैं और इनकी तुलना में पूंजीपति वर्ग के शासन में, पूंजीवादी पार्लामेंट के अन्दर, एक सच्ची मजदूर पार्टी का सच्चा कम्युनिस्ट दल बनाने का काम सचमुच बच्चों के खेल जितना आसान है।

यदि हमारे "उग्रवादी" और पार्लामेंट-विरोधी साथी इतनी छोटी कठिनाई पर भी काबू पाना नहीं सीखते, तो हम कहेंगे कि आगे चल कर वे या तो मजदूर वर्ग का अधिनायकत्व क़ायम करने में असमर्थ रहेंगे, या पूंजीवादी बुद्धिजीवियों तथा पूंजीवादी संस्थाओं को बड़े पैमाने पर अपनी मातहती में लाने और नये सांचे में ढालने में असफल रहेंगे; या फिर उनको बहुत जल्दी में अपनी शिक्षा पूरी करनी होगी, और इस जल्दबाजी से मजदूर वर्ग के हितों की बहुत हानि होगी, ये लोग

साधारण से अधिक ग़लतियां करेंगे, औसत से ज्यादा कमजोरी और निकम्मापन दिखायेंगे, इत्यादि, इत्यादि।

जब तक पूंजीपति वर्ग को उलटा नहीं जाता, और उसके बाद जब तक छोटे पैमाने की अर्थ-व्यवस्था और छोटे पैमाने का माल का उत्पादन पूरी तरह नहीं मिट जाता, तब तक पूंजीवादी वातावरण, सम्पत्ति के स्वामियों की आदतें, और निम्न-पूंजीवादी परम्पराएं भी जीवित रहेंगी, और वे केवल पार्लामेंट के क्षेत्र में नहीं, बल्कि सामाजिक कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में, बिना किसी अपवाद के सभी सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में, और मज़दूर आन्दोलन के बाहर और अन्दर दोनों जगहों पर मज़दूरों के काम में बाधा डालेंगी। और यदि किसी भी कार्यक्षेत्र की एक भी "अप्रिय" समस्या अथवा कठिनाई से पिंड छुड़ाने की, या उसकी ओर से आंखें मूंद लेने की कोशिश की गयी तो वह एक बहुत बड़ी ग़लती होगी, जिसका बाद में निश्चय ही फल भोगना पड़ेगा। हमें बिना किसी अपवाद के काम के प्रत्येक क्षेत्र पर अधिकार करने का तरीक़ा सीखना होगा। हमें सभी कठिनाइयों और सभी पूंजीवादी आदतों, रीति-रिवाजों और परम्पराओं पर क़ाबू पाना सीखना होगा। सवाल को किसी और तरह से पेश करना महज़ खिलवाड़ करना है, महज़ बचपना है।

१२ मई, १६२०

अप्रैल-मई १६२० में लिखी गयी

पुस्तिका के रूप में पहली बार

जून १६२० में प्रकाशित हुई

★

टिप्पणियां

१. अप्रैल १९१२ में जारशाही की फ़ौजों ने साइबेरिया में लीना की सोने की खानों के मजदूरों पर गोली चलायी थी। यहां उसी का जिक्र किया गया है। लीना के मजदूरों ने प्रबंधकों के क्रूर शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए हड़ताल की थी। जब उन पर गोली चलायी गयी, तो उसके उत्तर में रूस के सभी हिस्सों में मजदूरों ने राजनीतिक आम हड़तालें और प्रदर्शन किये। इसकी वजह से रूस के क्रान्तिकारी मजदूर आन्दोलन में एक नये शक्तिशाली उभार की शुरूआत हुई। पृष्ठ १३

२. लोंगुएवाद—१९१५ में फ्रांसीसी समाजवादी पार्टी के अन्दर एक धारा के रूप में प्रकट हुआ था।

लोंगुए एक सामाजिक-सुधारवादी था, उसके अनुयायी लोंगुएवादी कहलाते थे। ये लोग केन्द्रवादी विचार रखते थे और सामाजिक राष्ट्रवादियों के साथ समझौता करने की नीति पर चलते थे।

पहले महायुद्ध के समय लोंगुएवादियों का रुख सामाजिक-शान्तिवादी रुख था। रूस में अक्तूबर की समाजवादी क्रान्ति की विजय होने के बाद इन लोगों ने मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व का समर्थन करने की घोषणा की, पर वास्तव में वे उसके विरोधी बने रहे, और सामाजिक-देशाहंकारवादियों से मेल-मिलाप करने तथा लुटेरों की वारसाई संधि का समर्थन करने की अपनी नीति पर ही चलते रहे। फ्रांसीसी समाजवादी पार्टी की तूर्स कांग्रेस में (जो

दिसम्बर १९२० में हुई थी), जहां वामपक्ष की विजय हुई थी, इन लोगों का अल्पमत रहा। तब ये पक्के सुधारवादियों के साथ मिलकर पार्टी से अलग हो गये और तथाकथित ढाई इन्टरनेशनल में शामिल हो गये, और जब यह संस्था भी छिन्न-भिन्न हो गयी तो ये फिर दूसरी इन्टरनेशनल में पहुँच गये। पृष्ठ १४

३. स्वतंत्र लेबर पार्टी—१८९३ में बनायी गयी थी। उसके नेता थे जेम्स केयर हार्डी, जे० रैम्ज़े मैक्डोनॉल्ड, आदि। राजनीति में वह पूंजीवादी पार्टियों से स्वतंत्र होने का दावा करती थी, पर वास्तव में वह "समाजवाद से स्वतंत्र और उदारतावाद के आधीन" (लेनिन) थी। १९१४–१८ के साम्राज्यवादी विश्व युद्ध के शुरू होने पर स्वतंत्र लेबर पार्टी ने युद्ध के खिलाफ़ एक घोषणापत्र (१३ अगस्त १९१४ को) प्रकाशित किया। परन्तु बाद को फ़रवरी १९१५ में मित्र राष्ट्रों के समाजवादियों के लन्दन सम्मेलन में उसने उस सम्मेलन द्वारा स्वीकृत सामाजिक-देशाहंकारी प्रस्ताव का समर्थन किया। उस समय से ही स्वतंत्र लेबर पार्टी के नेता शान्तिवादी शब्दों की आड़ में सामाजिक-देशाहंकारी नीति का पालन करने लगे। १९१९ में कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल बन जाने के बाद, अपने साधारण कार्यकर्त्ताओं के दबाव के फलस्वरूप, स्वतंत्र लेबर पार्टी के नेताओं ने दूसरी इन्टरनेशनल से अलग हो जाने का फ़ैसला किया। १९२० में स्वतंत्र लेबर पार्टी तथाकथित ढाई इन्टर-नेशनल में शामिल हो गयी और उसका पतन हो जाने पर फिर दूसरी इन्टरनेशनल में शरीक हो गयी। पृष्ठ १४

४. फ़ेबियन लोग—१८८४ में इंग्लैंड के कुछ पूंजीवादी बुद्धजीवियों ने फ़ेबियन सोसाइटी नाम की एक सुधारवादी और बहुत ही अवसर-वादी संस्था बनायी थी। उसके सदस्य फ़ेबियन कहलाते थे। अपना नाम उसने रोमन सेनापति फ़ेबियस कंक्टेटर (जो "टालबाज" के नाम से मशहूर था) के नाम पर रखा था, जो अपनी टालमटोल की नीति के लिए और निर्णायक युद्ध से कन्नी काटने के लिए प्रसिद्ध

था। लेनिन के शब्दों में फ़ेबियन सोसायटी "अवसरवाद और उदारपंथी मज़दूर राजनीति के सबसे सुघड़ स्वरूप" का प्रतिनिधित्व करती थी। फ़ेबियन लोग मज़दूर वर्ग को वर्ग संघर्ष से हटाने का प्रयत्न करते थे और कहते थे कि पूंजीवाद को सुधारों के ज़रिए, धीरे-धीरे और शान्ति के साथ समाजवाद में बदला जा सकता है। १६१४–१८ के साम्राज्यवादी विश्व युद्ध में फ़ेबियन लोगों ने सामाजिक-देशाहंकारी रुख अपनाया। फ़ेबियनों के चरित्र-निर्माण के लिए देखिए : "एफ़० ए० सोर्ज आदि के नाम आई० एफ़० बेकेर, जे० डीट्ज़गेन, फ़्रेडरिक एंगेल्स, कार्ल मार्क्स, आदि के पत्र नामक पुस्तक के रूसी संस्करण की लेनिन द्वारा लिखित भूमिका" (संग्रहीत रचनाएं, चौथा रूसी संस्करण, खंड १२, पृष्ठ ३३०-३१); लेनिन का "रूसी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद का कृषि-सम्बंधी कार्यक्रम" (उपरोक्त पुस्तक, खंड १५, पृष्ठ १५४); "अंग्रेज़ों का शान्तिवाद और सिद्धान्तों की ओर अंग्रेज़ों की घृणा" (उ० पु०, खंड २१, पृष्ठ २३४); इत्यादि।   पृष्ठ १४

५. जर्मन स्वतंत्र सामाजिक जनवादी पार्टी—यह केन्द्रवादी पार्टी अप्रैल १६१७ में बनायी गयी थी। इसका मुख्य अंग काट्स्कीवादी "लेबर-एसोसियेशन" (मज़दूर संघ) नामक संगठन था। स्वतंत्र दलवाले पक्के सामाजिक-देशाहंकारवादियों से एकता चाहते थे, उनकी हिमायत करते थे और मज़दूरों को वर्ग संघर्ष त्याग देने को कहते थे।

अक्तूबर १६२० में इस पार्टी की हाले नामक स्थान में कांग्रेस हुई, जहां इसमें फूट पड़ गयी, और उसी साल दिसम्बर में उसके काफ़ी सदस्य जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी में शरीक हो गये। दक्षिण-पक्ष ने एक अलग पार्टी बना ली जो पुराने नाम से, स्वतंत्र सामाजिक-जनवादी पार्टी के नाम से, १६२२ तक क़ायम रही।   पृष्ठ १५

६. देखिए लेनिन का लेख "जर्मन मज़दूर आन्दोलन में किस चीज़ की नक़ल नहीं करनी चाहिए" (संग्रहीत रचनाएं, चौथा रूसी संस्करण, खंड २०, पृष्ठ २३१–३५)।   पृष्ठ २५

७. स्पार्टकसवादी—स्पार्टकस लीग के सदस्य स्पार्टकसवादी कहलाते थे। यह संगठन प्रथम विश्व युद्ध के दिनों में बनाया गया था। युद्ध के शुरू में जर्मनी के उग्रवादी सामाजिक-जनवादियों ने एक "अन्तर-राष्ट्रीय" दल बनाया था जिसके नेता कार्ल लीब्कनेख्त, रोजा लुक्जेमबर्ग, फ्रेंज मेहरिंग, क्लारा जेटकिन, आदि थे। बाद में यही दल अपने को "स्पार्टकस लीग" भी कहने लगा। वह साम्राज्य-वादी युद्ध के खिलाफ़ जनता में क्रान्तिकारी प्रचार करता था, जर्मन साम्राज्यवाद की लुटेरी नीति का भंडाफोड़ और सामाजिक-जनवादी नेताओं का पर्दाफ़ाश करता था। परन्तु सिद्धान्त और नीति के कुछ मुख्य प्रश्नों पर स्पार्टकसवादी, जर्मन उग्रवादी अपने को अर्ध-मेन्शेविक भ्रान्तियों से मुक्त न कर सके। वे साम्राज्यवाद के बारे में एक अर्ध-मेन्शेविक सिद्धान्त का प्रचार करते थे, जातियों के आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के मार्क्सवादी अर्थ (यानी अलग हो जाने और स्वतंत्र राज्य बना लेने तक के अधिकार) को नहीं मानते थे, साम्राज्यवाद के युग में राष्ट्रीय स्वतंत्रता के युद्धों की सम्भावना से इनकार करते थे, क्रान्तिकारी पार्टी की भूमिका को कम करके आंकते थे, और आन्दोलन के स्वयंस्फूर्त तत्वों के आगे झुक जाते थे। जर्मन उग्रवादियों की आलोचना लेनिन की इन रचनाओं में मिलती है: "जुनियस की पुस्तिका" (संग्रहीत रचनाएं, चौथा रूसी संस्करण, खंड २२, पृष्ठ २९१–३०५); "मार्क्सवाद का व्यंगचित्र और 'साम्राज्यवादी अर्थवाद'" (उ० पु०, खंड २३, पृष्ठ १६–६४); आदि। उनकी आलोचना स्तालिन के पत्र "बोल्शेविज्म के इतिहास से सम्बंधित कुछ प्रश्न" (लेनिनवाद की समस्याएं, मास्को १९४७, पृ० ३७८–८९) में भी मिलती है। १९१७ में स्पार्टकसवादी अपनी संगठनात्मक स्वतंत्रता को क़ायम रखते हुए, केन्द्रवादी "स्वतंत्र" दल में शामिल हो गये। जब जर्मनी में नवम्बर १९१८ में क्रान्ति हुई, तो उसके बाद स्पार्टकसवादी "स्वतंत्र" दल से अलग हो गये, और उसी साल दिसम्बर महीने में उन्होंने जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी बना ली। पृष्ठ २०

८. ब्रेस्त-लितोव्स्क शान्ति-संधि—वह लुटेरी संधि थी जिसे साम्राज्यवादी जर्मनी और उसके मित्रों ने, यानी आस्ट्रिया-हंगरी, बल्गारिया, और तुर्की ने नवजात और निर्बल सोवियत प्रजातंत्र पर १९१८ में लाद दिया था। संधि पर ३ मार्च १९१८ को दस्तखत हुआ। नवम्बर १९१८ की जर्मन क्रान्ति के बाद सोवियत सरकार ने उसे मानने से इनकार कर दिया।   पृष्ठ २१

९. लेबर पार्टी—यह १९०० में बहुत से मजदूर संगठनों को—ट्रेड यूनियनों और समाजवादी पार्टियों तथा दलों को मिला कर बनायी गयी थी। उसका उद्देश्य यह था कि पार्लामेंट में मजदूरों के प्रतिनिधियों को चुनकर भेजा जाय (इसलिए शुरू में उसका नाम था: मजदूर प्रतिनिधित्व समिति)। लेबर पार्टी नाम उसका १९०६ में हुआ। लेबर पार्टी बहुत ही अवसरवादी, और अपनी विचारधारा और कार्यनीति में लेनिन के शब्दों में "सरासर पूंजीवादी" थी और पूंजीपति वर्ग के साथ श्रेणी-सहयोग करने की नीति का पालन करती थी। १९१४–१८ के साम्राज्यवादी विश्व युद्ध में इसके नेताओं ने सामाजिक-देशाहंकारी रुख अपनाया और लेनिन के शब्दों में, "साम्राज्यवादी लूटमार में साझेदारी की।"

१९२४, १९२९, १९४५ और १९५० में लेबर पार्टी के हाथों में शासन की बागडोर आयी। उसकी बनायी हुई सरकारों ने हमेशा अंग्रेज साम्राज्यवाद की नीति का अनुसरण किया। १९५० में लेबर पार्टी की जो सरकार बनी, उसने अपनी घरेलू और वैदेशिक नीति में अंग्रेज साम्राज्यवादियों के प्रतिक्रियावादी कार्यक्रम को कार्यान्वित किया। लेबर पार्टी के दक्षिण-पंथी नेता सही मतलब में अमरीकी साम्राज्यवाद के दलालों की तरह काम करते हैं। वे सोवियत-विरोधी हैं, और शान्ति, जनतंत्र और समाजवाद की शक्तियों का विरोध कर रहे हैं।   पृष्ठ २५

१०. करेंस्की—रूस की उस अस्थाई सरकार का प्रधान मंत्री जिसे अक्तूबर की महान समाजवादी क्रान्ति ने उलट दिया था।

एडमिरल कोलचक और जनरल डेनीकिन उन क्रान्ति-विरोधी सेनाओं के नायक थे जिन्होंने हस्तक्षेप करनेवाली विदेशी सेनाओं की मदद से सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ के खिलाफ़ गृह-युद्ध छेड़ रखा था। पृष्ठ २७

११. कैडेट लोग (वैधानिक-जनवादी पार्टी)—रूस की प्रधान पूंजीवादी पार्टी का नाम। यह उदारपंथी, बादशाहत के समर्थक पूंजीपतियों की पार्टी थी जो अक्तूबर १६०५ में बनायी गयी थी। कैडेट लोगों ने झूठे जनतंत्र की रामनामी ओढ़कर और अपना नाम "जन-स्वातंत्र्य" की पार्टी रखकर किसानों को अपनी तरफ़ करने की कोशिश की। जारशाही को वे एक वैधानिक राजतंत्र के रूप में क़ायम रखने की कोशिश करते थे। बाद में कैडेट लोग साम्राज्य-वादी पूंजीपति वर्ग की पार्टी बन गये। अक्तूबर की समाजवादी क्रान्ति की विजय के बाद कैडेट लोगों ने सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ के खिलाफ़ क्रान्ति-विरोधी षड्यंत्र और विद्रोह संगठित किये। पृष्ठ २७

१२. त्रुदोविकी—निम्न-पूंजीवादी जनवादियों का यह दल अप्रैल १६०६ में पहली राज्य-दूमा के किसान सदस्यों को लेकर बनाया गया था। त्रुदोविकी दल चारों दूमाओं में रहा। १६१४-१८ के साम्राज्यवादी विश्व युद्ध में त्रुदोविकी ने सामाजिक-देशाहंकारी रुख अपनाया, और फ़रवरी १६१७ की पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति के बाद उसने कुलकों (धनी किसानों) के हितों का प्रतिनिधित्व किया और प्रतिक्रान्ति का साथ दिया। पृष्ठ ३७

१३. यहां लेनिन उस कार्यक्रम का ज़िक्र कर रहे हैं जो पेरिस कम्यून के भूतपूर्व सदस्य, ब्लांकीवादियों के सन्दनवाले दल ने १८७४ में प्रकाशित किया था; (देखिए फ़े. एंगेल्स का लेख, "निर्वासितों का साहित्य; २. कम्यून के ब्लांकीवादी शरणार्थियों का कार्यक्रम")।

ब्लांकीवादी लोग फ्रांस के क्रान्तिकारी लुई ओगस्त ब्लांकी (१८०५-८१) के अनुयायी थे। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के मूल ग्रंथों में

ब्लांक्वी को एक प्रमुख क्रान्तिकारी और समाजवाद का समर्थक मानते हुए भी, उसके संकीर्णतावाद की, और उसके काम करने के साज़िशों जैसे तरीक़ों की आलोचना की गयी है। ब्लांक्वीवाद वर्ग संघर्ष को नहीं मानता था। ब्लांक्वीवादियों का यह मत था कि मानवता पूंजीवाद की गुलामी से, मज़दूर वर्ग के वर्ग संघर्ष के ज़रिए नहीं मुक्त होगी, बल्कि चन्द बुद्धिजीवियों के षड्यंत्र के ज़रिए उसे मुक्ति हासिल होगी। पृष्ठ ६७

१४. ड्रेफ़स का मामला—ड्रेफ़स फ्रांसीसी सेना की ऊँची कमान का एक यहूदी अफ़सर था। उसे बादशाहत के समर्थक प्रतिक्रियावादी गुट ने एक झूठे मुक़दमे में फंसा दिया था। ड्रेफ़स पर राजद्रोह और जासूसी का झूठा आरोप लगाकर उसे आजीवन कारावास की सज़ा सुना दी गयी। अदालत के हुक्म को बदलवाने के लिए जोरदार आन्दोलन हुआ और उसके दौरान में प्रजातंत्रवादियों और राजतंत्रवादियों के बीच तीव्र संघर्ष हुआ। अन्त में, १९०६ में ड्रेफ़स निरपराध घोषित कर दिया गया। पृष्ठ ११२

१५. कॅप्प-लुट्टविट्ज़ विद्रोह—मार्च १९२० में कॅप्प, लुट्टविट्ज़ और बादशाहत के अन्य समर्थकों ने जर्मनी में एक क्रान्ति-विरोधी विद्रोह संगठित करने की कोशिश की। परन्तु बर्लिन के मज़दूरों ने इतनी मुस्तैदी से उसका मुक़ाबला किया कि चन्द हफ़्तों के अन्दर ही यह विद्रोह कुचल दिया गया। पृष्ठ १२५

★